गुनाह के फूल

गुलशन नन्दा

बम्बई ऐक्सप्रेस पूरी गति से रात के अन्धकार को चीरती हुई बढ़ी जा रही थी। दौड़ते हुए रेल के डिब्बों में से छन कर आता हुआ गतिमान प्रकाश यूं लग रहा था मानो एक पंक्ति में बहुत-से जुगनू उड़े जा रहे हों। पटरी पर पहियों की गड़गड़ाहट दूर तक एक गूंज छोड़े जा रही थी।

डाइनिंग कार में बैठी सुशील रात का खाना खा रही थी। वह अकेली न थी, बल्कि उसका छोटा भाई नवीन भी उसके सामने वाली सीट पर बैठा था। नवीन का अकेले बहन के संग रेल में यात्रा करने का पहला अवसर था। सुशील कालेज में पढ़ती थी और नवीन तीसरी कक्षा का विद्यार्थी था। दोनों क्रिस्मस की छुट्टियाँ काटने अपनी बड़ी बहन के पास भोपाल जा रहे थे।

नवीन बड़े चम्मच से सामने रखी प्लेट में से सूप पीने का प्रयत्न कर रहा था। गाड़ी की गति के कारण हिलने से चम्मच उसके हाथ में काँपा और सूप कपड़ों पर गिर गया। सुशील अनायास हँस पड़ी और नैपकिन से उसके कपड़ों पर गिरा सूप साफ़ करने लगी।

"दीदी!" कुछ लज्जित-सा होकर बहन की ओर देखते हुए नवीन ने पुकारा।

"हूँ।"

"यह अंग्रेजी खाना मुझ से न खाया जायेगा।"

"बस! घबरा गया···किसी बात को सीखने के लिए बड़ी तपस्या करनी पड़ती है।"

"नहीं दीदी! मुझसे यह न होगा।"

"धैर्य रखो…आओ मैं सिखाऊं…यूं उठाओ चम्मच को…दाएं हाथ से…"

सुशील नवीन को चम्मच थामने का ढंग सिखा ही रही थी कि सहसा रुक गई। उसे यूं अनुभव हुआ जैसे कोई उनके पास आकर रुक गया हो और उनकी बातें सुन रहा हो। उसने झट दृष्टि घुमा कर देखा। एक युवक उनके पास खड़ा मुस्करा रहा था। आंखें चार होते ही वह गम्भीर हो गया और भूखी दृष्टि से सुशील को निहारते हुए बोला—

"आपको कोई आपत्ति न हो तो इस खाली सीट पर बैठ जाऊं?" उसने सुशील के साथ वाली सीट की ओर संकेत किया।

सुशील ने उत्तर देने से पहले डिब्बे में चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। कमरा खचाखच भरा हुआ था, आस-पास सब सीटें भरी हुई थीं। उसने आलोचित दृष्टि से क्षण भर के लिए उस व्यक्ति का निरीक्षण किया। लम्बा-चौड़ा सुडौल शरीर, वासनामयी मोटी आंखें और उलझे हुए बाल…खाकी जीन की पतलून पर चमड़े की चौड़ी पेटी लगाए वह उसे निरन्तर घूरे जा रहा था। वेश-भूषा और हाव-भाव से वह अच्छा व्यक्ति प्रतीत न होता था। सुशील उसकी सूरत देख कर कांप गई। वह सोच ही रही थी कि क्या उत्तर दे कि उस व्यक्ति ने फिर अपना प्रश्न दोहराया।

सुशील क्षण-भर उसकी ओर देखते रहने के बाद संभली और डिब्बे के कोने में एक खाली सीट की ओर संकेत किया। युवक ने गर्दन घुमा उधर देखा और कुछ अनमने भाव से मुड़कर आगे बढ़ गया। नवीन और सुशील की, उसे निराश जाते हुए देखकर अनायास एक साथ ही हंसी छूट गई। हंसी की आवाज सुनकर वह युवक मुड़ा। सुशील ने झट मुंह पर हाथ रखकर आंखें नीचे कर लीं, किन्तु नवीन खिलखिला कर हंसने लगा।

"यू ! शट अप…" युवक ने कड़ी दृष्टि से बालक की ओर

देखते हुए कहा और लम्बे डग भरता हुआ आगे बढ़ गया। नवीन सहम कर चुप हो गया।

दोनों फिर से चुपचाप खाना खाने लगे। कभी-कभी खाते हुए दृष्टि घुमाकर वे कोने में बैठे हुए उस व्यक्ति को देख लेते। वह एक-टक उन्हीं को घूरे जा रहा था।

गाड़ी किसी छोटे स्टेशन पर रुकी। सुशील और नवीन झट नीचे उतर आये और अपने डिब्बे की ओर बढे। जाते-जाते क्षणभर के लिए रुक कर सुशील ने अपनी कलाई में बँधी हुई घड़ी को प्लेट-फार्म के क्लाक से मिलाया। रात के दस बज रहे थे।

अपने डिब्बे में पहुँच कर उन्हें ज्ञात हुआ कि उनकी सहयात्री अमरीकन महिला रास्ते में ही किसी स्टेशन पर उतर गई थी और अब फर्स्ट क्लास के इस डिब्बे में वे अकेले ही रह गये थे।

सुशील ने एक उड़ती-सी दृष्टि कमरे में दौड़ाई और फिर भीतर से दोनों किवाड़ों को ठीक से बोल्ट कर लिया। हवा के ठण्डे झोंके शरीर को काटने लगे थे। उसने दोनों ओर की खिड़कियों के शीशे चढ़ा दिए और बिस्तर खोलकर सीट पर बिछाने लगी। नवीन ने एक तकिया और कम्बल उठाया और दूसरी सीट पर जा लेटा। गाड़ी चल पड़ी और धीरे-धीरे उसकी गति तेज हो गई। सुशील ने लेटे-लेटे एक पत्रिका उठाई और पढने लगी। बीच में एक दो बार दृष्टि उठा कर उसने नवीन को देखा। वह सोया न था बल्कि आँखें खोले छत की तरफ देखे जा रहा था।

"नवीन!" सुशील ने पत्रिका को वक्ष पर रखते हुए धीरे से पुकारा।

"हूँ!"

"अब सो जाओ।"

"नींद नहीं आ रही, दीदी!"

"आँखें बन्द कर लो, स्वयं ही आ जायेगी।"

"जब तक बत्ती जल रही है···नहीं आयेगी।"

"ले···सोजा।" सुशील ने धड़ उठाया और स्विच आफ़ करके छत की दोनों बत्तियाँ बुझा दीं। कमरे में अन्धेरा छा गया। क्षण-भर वह यूं ही पड़ी रही और फिर सीट की साइड-लाइट जला कर धीमे प्रकाश में पत्रिका उठाकर पढ़ने लगी। नवीन ने पलकें बन्द कर लीं और सोने का प्रयत्न करने लगा।

'गराड़ गड़गड़···गराड़'···वातावरण में गड़गड़ाहट का एक शोर उत्पन्न हुआ। नवीन अचानक चौंक कर उठ बैठा और भयभीत हुआ सुशील के पास चला आया।

"क्यों···क्या है?"

"यह शोर···मुझे डर लग रहा है।"

"पगला···डर काहे का···गाड़ी पुल से गुज़र रही है···उसी का शोर है।"

"नहीं, दीदी! मुझे डर लग रहा है।"

"तो आ···मेरे पास आजा।"

नवीन हृदय की तेज धड़कन को दूर करने के लिए दीदी के शरीर से लिपट कर लेट गया। सुशील ने स्नेह से उसे अंक में भर लिया और फिर पत्रिका पढ़ने लगी। गाड़ी अपनी गति से चली जा रही थी। धीरे-धीरे नींद उनकी आँखों में डेरा जमाने लगी।

"दीदी!" नवीन ने पलकों को आधा खोलते हुए पुकारा।

"हूँ।"

"गाड़ी भोपाल कै बजे पहुँचेगी?"

"रात के एक बजे।"

"स्टेशन पर जीजाजी हमें लेने न आये तो···"

"तो क्या···हम स्वयं ही घर जा पहुँचेंगे।"

"रात के एक बजे···अकेले···?" नवीन ने आश्चर्य से पूछा।

"क्या हुआ? भोपाल तो क्या, सारी दुनिया अकेले घूम आऊँ।"

"अच्छा···बड़ी निडर हो···।"

"हाँ, और तू डरपोक···अब सो जा।"

नवीन चुप हो गया और सुशील पत्रिका पढ़ने लगी। कोई बड़ी रोचक कहानी थी जिसमें उसे आनन्द आ रहा था। नवीन कुछ देर चुप रहने के बाद फिर बोला—

"दीदी! गाड़ी भोपाल पहुँचने पर हम सोते रहे तो क्या होगा?"

"हमें गार्ड जगा देगा।"

"और उसे भी नींद आ गई तो ?"

"जीजाजी हमें ढूंढ कर उठा देंगे।" सुशील ने पीछा छुड़ाने के लिए कहा।

"अरे यदि गाड़ी भोपाल रुके ही ना···आगे चली गई तो···?"

"तो तेरा सिर···नवीन! अब सो जा···मेरा दिमाग़ मत चाट।"

"क्या करूं···नींद नहीं आती···कोई कहानी सुनाओ···"

"कहानी ? अच्छा···पहले यह अपनी कहानी समाप्त कर लूं।"

नवीन फिर चुप हो गया और दीदी के मुख को देखने लगा। कहानी पढ़ते हुए उसके होंठो पर हल्की-सी मुस्कान खिल आई थी। कुछ समय यूँ ही मौन रहा। नवीन को नींद न आ रही थी और चुप रहना उसे खल रहा था। उसने बहिन को फिर पुकारा—

"दीदी !"

"अब क्या है ?"

"हम भोपाल क्यों जा रहे हैं ?"

"क्रिसमस की छुट्टियाँ बिताने।"

"वह तो मैं जा रहा हूँ।"

"और मैं?"

"टाफ़ी खिलाने का वचन दो···तो बताता हूँ।"

"घूस लोगे क्या ?"

"हाँ···बात ही ऐसी है।"

जब तक बत्ती जल रही है···नहीं आयेगी।"
ले···सोजा।" सुशील ने धड़ उठाया और स्विच आफ़ करके
ी दोनों बत्तियाँ बुझा दीं। कमरे में अन्धेरा छा गया। क्षण-
ह यूँ ही पड़ी रही और फिर सीट की साइड-लाइट जला कर
प्रकाश में पत्रिका उठाकर पढ़ने लगी। नवीन ने पलकें बन्द कर
ौर सोने का प्रयत्न करने लगा।
वातावरण में गड़गड़ाहट का एक
'गराड़ गड़गड़···गराड़'···नवीन अचानक चौंक कर उठ बैठा और भयभीत
उत्पन्न हुआ।
सुशील के पास चला आया।

"क्यों···क्या है?"

"यह शोर···मुझे डर लग रहा है।"

"पगला···डर काहे का···गाड़ी पुल से गुज़र रही है···उसी का
ोर है।"

"नहीं, दीदी! मुझे डर लग रहा है।"

"तो आ···मेरे पास आजा।"

नवीन हृदय की तेज़ धड़कन को दूर करने के लिए दीदी के
शरीर से लिपट कर लेट गया। सुशील ने स्नेह से उसे अंक में भर
लिया और फिर पत्रिका पढ़ने लगी। गाड़ी अपनी गति से चली जा
रही थी। धीरे-धीरे नींद उनकी आँखों में डेरा जमाने लगी।

"दीदी!" नवीन ने पलकों को आधा खोलते हुए पुकारा।

"हूँ।"

"गाड़ी भोपाल कै बजे पहुँचेगी?"

"रात के एक बजे।"

"स्टेशन पर जीजाजी हमें लेने न आये तो···"

"तो क्या···हम स्वयं ही घर जा पहुँचेंगे।"

"रात के एक बजे···अकेले···?" नवीन ने आश्चर्य से पूछा।

"क्या हुआ? भोपाल तो क्या, सारी दुनिया अकेले घूम आऊँ।"

"अच्छा…बड़ी निडर हो…।"

"हाँ, और तू डरपोक…अब सो जा।"

नवीन चुप हो गया और सुशील पत्रिका पढ़ने लगी। कोई बड़ी रोचक कहानी थी जिसमें उसे आनन्द आ रहा था। नवीन कुछ देर चुप रहने के बाद फिर बोला—

"दीदी! गाड़ी भोपाल पहुँचने पर हम सोते रहे तो क्या होगा?"

"हमें गार्ड जगा देगा।"

"और उसे भी नींद आ गई तो?"

"जीजाजी हमें ढूंढ कर उठा देंगे।" सुशील ने पीछा छुड़ाने के लिए कहा।

"अरे यदि गाड़ी भोपाल रुके ही ना…आगे चली गई तो…?"

"तो तेरा सिर…नवीन! अब सो जा…मेरा दिमाग़ मत चाट।"

"क्या करूं…नींद नहीं आती…कोई कहानी सुनाओ…"

"कहानी? अच्छा…पहले यह अपनी कहानी समाप्त कर लूँ।"

नवीन फिर चुप हो गया और दीदी के मुख को देखने लगा। कहानी पढ़ते हुए उसके होंठों पर हल्की-सी मुस्कान खिल आई थी। कुछ समय यूँ ही मौन रहा। नवीन को नींद न आ रही थी और चुप रहना उसे खल रहा था। उसने बहिन को फिर पुकारा—

"दीदी!"

"अब क्या है?"

"हम भोपाल क्यों जा रहे हैं?"

"क्रिसमस की छुट्टियाँ बिताने।"

"वह तो मैं जा रहा हूँ।"

"और मैं?"

"टाफ़ी खिलाने का वचन दो…तो बताता हूँ।"

"घूस लोगे क्या?"

"हाँ…बात ही ऐसी है।"

"मुझे नहीं पूछना।"

"माँजी बाबा से कह रही थीं···" वह चुप हो गया।

"क्या कह रही थीं?"

"टाफ़ी खिलाओगी ना?"

"अच्छा भाई! खिलाऊँगी।"

"जानती हो तुम्हें भोपाल क्यों भेजा है माँजी ने?"

"क्यों?"

"जीजी ने वहाँ तुम्हारे लिए कोई लड़का देखा है···इसीलिये तुम्हें बुलाया है।"

"हट···नटखट कहीं का।" सुशील ने बनते हुए झटक कर नवीन को अलग कर दिया और पलट कर पत्रिका पढ़ने लगी। नवीन हँसने लगा और डिब्बे में उसकी सुरीली हँसी की आवाज़ गूंज गई। दीदी को छेड़कर वह प्रसन्न हो रहा था। सुशील को भी उसकी हँसी अच्छी लग रही थी। आँखें पत्रिका में गड़ी हुई थीं, किन्तु मन कहीं और कल्पित भविष्य में दौड़ने लगा।

'जीजी ने तुम्हारे लिए कोई लड़का देखा है······इसीलिये तुम्हें बुलाया है।' वह सोचने लगी, 'जीजी ने लड़का देखा है···यह तो माँ ने उसे बता ही दिया था···कैसा होगा वह लड़का···असिस्टेंट स्टेशन मास्टर···फ़ोटो से तो अच्छा ही लगता है···उसके वहाँ जाने पर वे लोग बात पक्की कर देंगे···उसके जीवन-साथी का निर्णय हो जायेगा और वह जीवन···सुन्दर ही तो होगा···'

अपने विचारों में खोई वह भूल ही गई कि कब नवीन की हँसी बन्द हो गई। उसे सुध तब आई जब बन्द डिब्बे में उसे नवीन की चीख सुनाई दी। वह डर से उसके शरीर के साथ आ चिपका था। पत्रिका सुशील के हाथ से गिर गई और वह सहसा चौंक कर मुड़ी।

बाथरूम का आधा किवाड़ खुला था और उसके बाहर वही डाइनिंग कार वाला व्यक्ति दीवार का सहारा लिये खड़ा सिग्रेट पी रहा

था। सिग्रेट के धुएँ से कमरे में छोटे-छोटे बादल से फैल गये थे। सुशील के होठों से चीख निकलते-निकलते रह गई। वह हड़बड़ाई-सी उठकर सीट पर बैठ गई। उसके शरीर का रोआँ-रोआँ काँप रहा था। उसने घबराई हुई दृष्टि कमरे के किवाड़ों पर डाली। दोनों ओर बोल्ट बन्द थे। अभी वह कुछ बोलने का प्रयत्न ही कर रही थी कि वह व्यक्ति मुस्कराते हुए बोला—

"मैं जानता था तुम कार में मुझे अपने समीप न बैठने दोगी।"

सुशील चुप रही। इतनी रात गये, बन्द डिब्बे में अकेली, भयभीत और सहमी हुई सी वह उसकी ओर देखने लगी। वह व्यक्ति क्षण-भर रुक कर फिर बोला—

"तुम भी क्या करतीं? विवश थीं—" वह सामने की सीट पर असावधानी से बैठ गया।

"किन्तु, यहाँ आने को तुमसे किसने कहा?" सुशील ने आँचल खींचकर शरीर को लपेटते हुए साहस बटोर कर कहा।

"समय ने......सोचा, रात आराम से कट जायेगी...और फिर तुम्हारा साथ..."

"यह स्त्रियों का डिब्बा है इसमें पुरुष यात्रा नहीं कर सकते।"

"यह कागजी नियम है...सरकार का बनाया हुआ...वरन् पुरुष तो यात्रा ही स्त्रियों के मन द्वारा करते हैं।"

"शट-अप..."

सुशील के मुख पर क्रोध के चिन्ह देखकर वह व्यक्ति हँस पड़ा और सिग्रेट के लम्बे 'कश' खींचने लगा।

"दीदी! जंजीर खींच लो, कोई चोर-डाकू है।" नवीन ने धीरे से बहिन के कान में कहा।

सुशील को अभी तक जंजीर की नहीं सूझी थी। नवीन की बात सुनकर वह उठी और शीघ्रता से जंजीर के पास पहुँच गई। अभी उसने हाथ बढ़ाया ही था कि उस व्यक्ति ने कमर में बंधी हुई पेटी

में से एक कटार निकाली। सुशील की चीख निकल गई और उसका जंज़ीर की ओर बढ़ा हुआ हाथ वहीं रुक गया। नवीन सीट पर घुटनों के बल बैठा हुआ यह दृश्य देख रहा था। उसने झट लपक कर बत्ती जला दी और कमरे में उजाला हो गया।

भद्दी हँसी हँसने वाला वह व्यक्ति सहसा गम्भीर हो गया। मुंह में से जलता हुआ सिग्रेट निकालकर उसने फ़र्श पर फेंक दिया और उसे बूट के नीचे मसलकर उठ खड़ा हुआ।

"खबरदार ! जो एक पाँव भी इधर बढ़ाया।"

वह व्यक्ति सुशील पर आँखें गाड़े हुए आगे बढ़ा। सुशील ने जंजीर की हत्थी को पकड़ लिया और उसे खींचने को झुकी ही थी कि उस व्यक्ति ने पूरे बल से वह कटार उसकी ओर फेंकी। खट की आवाज़ हुई और वह कटार उसके हाथ के पास ही दीवार में घुस गई। सुशील काँप गई और बेबस हिरनी के समान इधर उधर देखने लगी। कटार वाले व्यक्ति ने दूसरे ही क्षण लपक कर उसे कलाई से पकड़कर झटके से सीट पर गिरा दिया। कलाई पर हाथ पड़ने से डिब्बे में चूड़ियों की एक झंकार उत्पन्न हुई और कुछ चूड़ियाँ टूट कर फ़र्श पर बिखर गईं। वह जाल में फंसे पक्षी के समान फड़फड़ा कर अपने आप को स्वतन्त्र करने का व्यर्थ प्रयत्न करने लगी।

"बदमाश ! गुण्डे...! अकेली लड़की देखकर डराता है...छोड़ दे मुझे, छोड़ दे मुझे..."

जब और कोई बस न चला तो उसने जोर से अपने दाँत उसके हाथ में गाड़ दिए। व्यक्ति को पीड़ा का आभास हुआ और उसने क्षण भर के लिए उसे स्वतन्त्र कर दिया, किन्तु फिर दोनों हाथों से ज़ोर से पकड़ कर उसके ऊपर झुक गया और बोला—

"मैं जो चाहता हूं उसे छीनकर लेता हूँ...भीख मांगने का स्वभाव नहीं मेरा।"

नवीन ने उसे दीदी पर झुके देखा तो सीट के पास रखा टिफ़िन

कैरियर उठा कर ज़ोर से उसके सिर पर दे मारा। सुशील उसके बोझ के नीचे दवी निरन्तर तड़प रही थी। नवीन ने एक वार फिर टिफिन कैरियर उठाया और फिर वहीं दे मारा। दूसरी चोट पड़ने से उसके सिर से लहू वहने लगा।

वह क्रोध में छटपटा गया और उठकर एक ही झटके से नवीन को वाथरूम में धकेल कर वाहर से चटकनी लगा दी। सुशील ने उठने का प्रयत्न किया, किन्तु उस निर्दयी व्यक्ति ने उसे पूरे वल से फिर सीट पर गिरा दिया।

नवीन भीतर से ज़ोर से चिल्लाये और किवाड़ खटखटाये जा रहा था वाहर डिब्बे में सुशील की चीखें गूँज रही थी और यह सब चीखें चिल्लाहटें गाड़ी की गड़गड़ाहट में डूब के रह गई। इन्हें निर्जीव दीवारों और खिड़कियों के अतिरिक्त किसी ने न सुना।

थोड़ी देर वाद सुशील की चीख-पुकार धीमी पड़ गई, फिर सिसकियों में परिवर्तित होते-होते बिल्कुल मौन हो गई। नवीन वड़ी देर तक दीदी को पुकारता रहा, रोता रहा। उसने भीतर 'टायलट' का शीशा भी तोड़ दिया, किन्तु सब अकार्थ। गाड़ी चलती रही, चलती रही मानो कुछ हुआ ही न हो।

में से एक कटार निकाली। सुशील की चीख निकल गई और उसका जंजीर की ओर बढ़ा हुआ हाथ वहीं रुक गया। नवीन सीट पर घुटनों के बल बैठा हुआ यह दृश्य देख रहा था। उसने झट लपक कर बत्ती जला दी और कमरे में उजाला हो गया।

भद्दी हँसी हँसने वाला वह व्यक्ति सहसा गम्भीर हो गया। मुंह में से जलता हुआ सिग्रेट निकालकर उसने फ़र्श पर फेंक दिया और उसे बूट के नीचे मसलकर उठ खड़ा हुआ।

"खबरदार! जो एक पाँव भी इधर बढ़ाया।"

वह व्यक्ति सुशील पर आँखें गाड़े हुए आगे बढ़ा। सुशील ने जंजीर की हत्थी को पकड़ लिया और उसे खींचने को झुकी ही थी कि उस व्यक्ति ने पूरे बल से वह कटार उसकी ओर फेंकी। खट की आवाज़ हुई और वह कटार उसके हाथ के पास ही दीवार में घुस गई। सुशील काँप गई और बेबस हिरनी के समान इधर उधर देखने लगी। कटार वाले व्यक्ति ने दूसरे ही क्षण लपक कर उसे कलाई से पकड़कर झटके से सीट पर गिरा दिया। कलाई पर हाथ पड़ने से डिब्बे में चूड़ियों की एक झंकार उत्पन्न हुई और कुछ चूड़ियाँ टूट कर फ़र्श पर बिखर गईं। वह जाल में फंसे पक्षी के समान फड़फड़ा कर अपने आप को स्वतन्त्र करने का व्यर्थ प्रयत्न करने लगी।

"बदमाश! गुण्डे...! अकेली लड़की देखकर डराता है...छोड़ दे मुझे, छोड़ दे मुझे..."

जब और कोई बस न चला तो उसने ज़ोर से अपने दाँत उसके हाथ में गाड़ दिए। व्यक्ति को पीड़ा का आभास हुआ और उसने क्षण भर के लिए उसे स्वतन्त्र कर दिया, किन्तु फिर दोनों हाथों से ज़ोर से पकड़ कर उसके ऊपर झुक गया और बोला—

"मैं जो चाहता हूँ उसे छीनकर लेता हूँ...भीख माँगने का स्वभाव नहीं मेरा।"

नवीन ने उसे दीदी पर झुके देखा तो सीट के पास रखा टिफ़िन

कैरियर उठा कर जोर से उसके सिर पर दे मारा। सुशील उसके बोझ के नीचे दबी निरन्तर तड़प रही थी। नवीन ने एक बार फिर टिफ़िन कैरियर उठाया और फिर वही दे मारा। दूसरी चोट पड़ने से उसके सिर से लहू बहने लगा।

वह क्रोध में छटपटा गया और उठकर एक ही झटके से नवीन को बाथरूम में धकेल कर बाहर से चटकनी लगा दी। सुशील ने उठने का प्रयत्न किया, किन्तु उस निर्दयी व्यक्ति ने उसे पूरे बल से फिर सीट पर गिरा दिया।

नवीन भीतर से जोर से चिल्लाये और किवाड़ खटखटाये जा रहा था बाहर डिब्बे में सुशील की चीखें गूंज रहीं थीं और यह सब चीखें चिल्लाहटें गाड़ी की गड़गड़ाहट में डूब के रह गईं। इन्हें निर्जीव दीवारों और खिड़कियों के अतिरिक्त किसी ने न सुना।

थोड़ी देर बाद सुशील की चीख-पुकार धीमी पड़ गई, फिर सिसकियों में परिवर्तित होते-होते बिल्कुल मौन हो गई। नवीन बड़ी देर तक दीदी को पुकारता रहा, रोता रहा। उसने भीतर 'टायलट' का शीशा भी तोड़ दिया, किन्तु सब अकार्य। गाड़ी चलती रही, चलती रही मानो कुछ हुआ ही न हो।

दो

रात का एक बज चुका था। हरदयाल और उसकी पत्नी सुलोचना स्टेशन मास्टर के कमरे में बैठे बड़ी व्याकुलता से बम्बई ऐक्सप्रेस की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनकी दृष्टि वसन्त पर लगी थी जो तार की टिक-टिक में व्यस्त था। टिक-टिक समाप्त होते ही वसन्त ने मुड़कर हरदयाल की ओर देखा और बोला—

"गाड़ी आधा घण्टा लेट है।"

"उफ़! आप लोगों ने भी गाड़ी का बेढ़ब टाइम रखा है...पूरी रात आंखों में कट जाती है।" सुलोचना बोली।

"तो क्या हुआ भाभी! इसी बहाने आप हमारे पास आ गईं।"

इतने में रेल का एक कर्मचारी उनके सामने गर्म-गर्म काफ़ी के तीन प्याले रख गया। हरदयाल ने पूछा—

"यह क्या?"

"काफ़ी।"

"सो तो देख रहा हूँ...किन्तु यह कष्ट क्यों?"

"कष्ट कैसा? रात भी ठण्डी है और प्रतीक्षा भी कठिन है...दोनों कट जायेंगे।"

एक साथ तीनों की हल्की-सी हँसी कमरे में गूंज गई और वे काफ़ी पीने लगे। सुलोचना कनखियों से वसन्त को झांके जा रही थी। उसे विश्वास था कि सुशील को एक बार देखते ही वह 'हां' कर देगा। वह सोच रही थी 'कितनी अच्छी जोड़ी रहेगी!'

हरदयाल भोपाल रेलवे पुलिस का इन्चार्ज था और वसन्त वहां का असिस्टेन्ट स्टेशन मास्टर। लड़का सुन्दर, प्रसन्नमुख और स्वस्थ था। और हरदयाल ने पत्नी के कहने पर उसे सुशील के लिए चुना

था। बसन्त हरदयाल की इस प्रार्थना को अस्वीकार न कर सका, बस एक बार लड़की को देखने से पूर्ण निर्णय हो जाना था।

जब बहुत समय तक कमरे में मौन रहा तो बसन्त ने काफ़ी का प्याला समाप्त करते हुए पूछा—

"सुशील अकेली आ रही है क्या ?"

"नहीं...नवीन, उसका छोटा भाई भी साथ है।" हरदयालने उत्तर दिया।

"लो भैया, पन्द्रह मिनट तो हो गये...अब..." सुलोचना ने घड़ी की ओर देखते हुए कहा।

"कहिए तो एक-एक कप और..."

"नहीं···मेरा अर्थ···"

"अर्थ···आज सर्दी अधिक है···" बसन्त ने बात काट दी और मेज पर रखी घण्टी बजा दी। सुलोचना और हरदयाल 'न, न' ही करते रहे, किन्तु उसने तीन प्याले काफी के और मँगवा लिए।

गाड़ी की घण्टी बजी और बसन्त फिर तार की 'टिक-टिक में लग गया। हरदयाल सुलोचना को लेकर बाहर प्लेटफ़ार्म पर चला आया। गाड़ी सिगनल के पास पहुँच चुकी थी। सुलोचना की व्याकुलता बढ़ गई। सुशील और नवीन दोनों आज पहली बार उसके पास रहने को आ रहे थे।

प्रतीक्षा की घड़ियाँ समाप्त हुई और गाड़ी उनके सामने आकर रुक गई। दोनों उत्सुकतापूर्वक खिड़कियों में से झाँकते हुये चेहरों को देखने लगे, किन्तु सुशील और नवीन कहीं भी दिखाई न दिए। किसी ने उन्हें अपनी ओर पुकार कर नहीं बुलाया। सुलोचना ने निराशामय स्वर में कहा—

"आप दाईं ओर जाइये और मैं बाईं ओर देखती हूँ।"

"पूरी गाड़ी देखने से लाभ ? वह तो फर्स्ट क्लास में होंगे, और फर्स्ट क्लास की बोगी वह रही···सामने।"

"किन्तु, वहाँ तो कोई दिखाई नहीं दे रहा।"

"हो सकता है सो गये हों।" हरदयाल यह कहते हुए आगे बढ़कर डिब्बों के बाहर नामों को पढ़ने लगा। एकाएक वह डिब्बे के सामने रुक गया और ऊँचे स्वर में पढ़ने लगा, मिस सुशील···मिसेज़ वाटसन।

"ये रहे···शायद सो रहे हैं।" उसने सुलोचना को पुकारते हुए कहा।

डिब्बे का द्वार भीतर से बन्द था। उसने नवीन और सुशील का नाम लेकर दो-चार बार ज़ोर से पुकारा, फिर द्वार को खटखटाया, किन्तु कोई उत्तर न मिला। थोड़ी देर बाद उसे कुछ सिसकियों की ध्वनि-सी सुनाई दी। वह चौंक कर कान लगाकर सुनने लगा। ध्वनि बाथरूम से आ रही थी। कोई भीतर बन्द धीरे स्वर में रो रहा था। हरदयाल का माथा ठनका। उसने उछल कर धुँधले शीशे में से झाँकने का प्रयत्न किया, किन्तु कुछ भी देख न सका। कोई दुर्घटना अवश्य हुई है यही जान पड़ता था।

"क्या बात है?" सुलोचना ने पास आते हुए चिन्तित स्वर में पूछा।

हरदयाल ने कोई उत्तर न दिया और झट गाड़ी के नीचे से दूसरी ओर जाकर डिब्बे के दूसरे द्वार को पूरे बल से भीतर की ओर धकेलने लगा। एक ही धक्के से पूरा पट खुल गया। भीतर अँधेरा था, किन्तु प्लेटफार्म का धुँधला प्रकाश भीतर आ रहा था। उसने सुरक्षा के लिए कमर से पिस्तौल निकाल कर हाथ में थामी और सावधानी से भीतर आकर बत्ती जला दी।

कमरे में प्रकाश होते ही वह भौंचक्का-सा खड़ा का खड़ा रह गया। उसकी धमनियों में क्षण-भर के लिए रक्त का प्रभाव रुक सा गया और वह मूर्ति बना आँखें फाड़े उस भयानक दृश्य को देखने लगा।

उसे अपनी आँखों पर विश्वास न आ रहा था···उसका मस्तिष्क इस दुर्घटना को स्वीकार न कर पा रहा था।

सामने फर्श पर सुशील मूर्छित पड़ी थी। इधर-उधर लहू के धब्बे दिखाई दे रहे थे, उसके फटे हुए वस्त्रों और अर्ध-नग्न शरीर से यह स्पष्ट था कि किसी मानव-रूपी भेड़िये ने बड़ी बर्बरता से उसके स्तीत्व पर वार किया था। उसका पूरा शरीर लहू में लथपथ था।

दूसरी ओर से सुलोचना द्वार खोलने के लिए पुकार रही थी। कुछ समय एकटक इस भयानक दृश्य को देखते रहने के बाद उसने सीट पर बिस्तर से चादर उठाई और उसके अर्ध-नग्न शरीर को ढाँप दिया, फिर झुककर उसके हृदय की धड़कन सुनने लगा उसकी नाड़ी देखी, मुँह खोलकर सुराही में पानी टपकाया, किन्तु सुशील नहीं हिली। उसका शरीर ठण्डा पड़ चुका था, अकड़े हुए दाँत खुलने से लहू की कुछ बूँदें मुँह से बाहर निकल कर हरदयाल के हाथों को रंग गईं। उसने उसका चेहरा दोनों हाथों में लेकर करुण स्वर में पुकारा, "सुशील" "सुशील"···किन्तु सुशील होती तो बोलती···वह तो इस दुनिया से बहुत दूर जा चुकी थी।

हरदयाल ने उसके मुँह को भी चादर से ढक दिया और दूसरी ओर का द्वार खोल दिया। सुलोचना ने झट भीतर प्रवेश होते ही सुशील का हाल पूछा। हरदयाल ने उसे कोई उत्तर नहीं दिया और उसके सामने खड़ा हो गया। सुलोचना उसके गंभीर मुख की ओर देखने लगी। अभी वह उससे कुछ पूछने भी न पाई थी कि बाहर से बसन्त ने आकर प्रश्न किया—

"आये क्या ?"

"बसन्त ! हमारी सब योजनाएँ ढ़ेर हो गईं।

"मैं समझा नहीं···भय्या !"

"सुशील की हत्या···"

अभी वह बात पूरी भी न कह पाया था कि सुलोचना की चीख़

निकल गई। वह पहले ही पति को शंका की दृष्टि से देख रही थी। 'हत्या' का नाम सुनते ही वह आगे बढ़ी और चादर को हटाकर सिर पीट कर रह गई। इतने में गार्ड तथा कुछ और व्यक्ति भी वहाँ आ गये। सुशील की इस बात को देखकर वह नवीन को भूल ही गया था। सहसा उसे बाथरूम के भीतर से दबी सिसकियों की ध्वनि सुनाई दी। हरदयाल ने झट द्वार खोल दिया। नवीन कमोड का सहारा लिए अचेतन अवस्था में सिसकियाँ भर रहा था। उसके दोनों हाथ पीठ-पीछे बंधे हुए थे, आँखें बन्द थीं। उसे कोई सुध न थी, किन्तु फिर भी अनायास ही उसके मुँह से हलकी सिसकियों की आवाज निकल रही थी। हरदयाल ने झट उसके हाथ खोले और उठाकर बसन्त के हाथों में देते हुए बोला—

"इसे शीघ्र डाक्टर के पास ले चलो।"

"और आप...?"

"मैं अभी आता हूँ और अपनी भाभी को भी ले जाओ।" उस ने सुलोचना की ओर देखते हुए कहा।

"और मेरी सुशील..."सुलोचना ने करुणा भरे स्वर में पूछा।

"सुशील···सुशील को ले जाकर अब क्या करोगी अब···अब तो उसकी सोचो जिसमें जीवन के चिन्ह हैं।"

यह कहकर हरदयाल गार्ड को साथ लेकर बोगी को गाड़ी से कट-वाने का प्रबन्ध करने लगा। जांच-पड़ताल के लिए इसका होना आव-श्यक था।

धीरे-धीरे डिब्बे के सामने लोगों की भीड़ लग गई। किसी की हत्या हो गई।···किन्तु, किसकी हत्या हुई? कैसे हुई? यह हरदयाल ने किसी को न बताया।

बोगी काटकर स्टेशन में एक ओर लगा दी गई और उस पर पुलिस का पहरा नियुक्त कर दिया गया। दूसरे साथ के डिब्बों के यात्रियों को विवशतः अपना स्थान छोड़कर और कमरों में जाना पड़ा।

इस दुर्घटना ने हरदयाल के मनोमस्तिष्क पर गहरा आघात किया। अपनी चौदह वर्ष की नौकरी में उसने इससे अधिक भयानक घटना न देखी थी और सबसे बढ़कर दुखदायक बात यह थी कि इस दुर्घटना का शिकार वह मासूम बाला थी जिसके भविष्य के सुख का भवन निर्माण वह स्वयं अपने हाथों से करने करने वाला था ; किन्तु विधाता को यह स्वीकार न था।

दोनों को पुलिस की देख-रेख में छोड़कर वह सीधा स्टेशन मास्टर के कमरे में आया जहाँ नवीन को सुध में लाने का प्रयत्न किया जा रहा था। एक बार इस बीच में उसने थोड़ी देर के लिए आँखें खोलीं थी, किन्तु चारों ओर देखकर फिर बेसुध हो गया था। इस दुर्घटना से वह अत्यधिक डर गया था। जब बड़ी देर तक वह किसी उपाय से सुध में न आया तो हरदयाल सुशील की लाश का प्रबन्ध करने के लिए फिर प्लैटफ़ार्म पर लौट आया।

लाश उठवाने से पहले डिब्बे का कई कोनों से फ़ोटो उतरवा लिया गया। सामान को बिना हिलाये-डुलाये वहीं पड़ा रहने दिया गया और लाश को पोस्टमार्टम के लिए अस्पताल भिजवा दिया गया। हरदयाल ने डिब्बे का भली प्रकार निरीक्षण किया, किन्तु बिना नवीन के सुध में आये कुछ निर्णय नहीं हो सकता था।

इस काम में हरदयाल को लगभग तीन घण्टे लग गये। इससे अवकाश पाकर वह दोबारा स्टेशन मास्टर के कमरे में पहुँचा ही था कि देखते-देखते नवीन ने आँखें खोल दीं। सुध में आते ही उसके मुँह से निकला—

"दीदी!"

सुलोचना आगे बढ़ी किन्तु डाक्टर ने उसे हाथ से वहीं रोक दिया और स्वयं उसके सामने आते ही बोला—

"दीदी को मिलोगे?"

"हाँ! कहाँ है मेरी दीदी?" उसने अपनी सूनी [illegible]

"कौन सा स्टेशन था ?"

"स्टेशन कहाँ था···गाड़ी तो चल रही थी।"

"क्या किवाड़ भीतर से बन्द न किये थे ?"

"किवाड़ तो बन्द था···वह बाथ-रूम से बाहर निकला था।"

"ओह ! उसे देखकर पहचान लोगे क्या !"

"हाँ, जीजाजी ! लम्बा-चौड़ा शरीर···बढ़े हुए बाल···खाकी जीन की पतलून पर राबिन हुड जैसी बैल्ट लगाये था···बायें गाल पर एक लम्बा-सा काला निशान था।"

"फिर क्या हुआ !"

"जब दीदी के कहने पर वह नीचे न उतरा तो दीदी ने जंजीर खींचने के लिये हाथ बढ़ाया···उसने झट दीदी का हाथ पकड़कर उसे नीचे गिरा दिया।"

"तुम कहाँ थे ?"

"वहीं···दीदी के रोने-चीखने पर भी जब उसने उसे न छोड़ा तो मैंने पास रखा टिफ़िन कैरियर उसके सिर पर दे मारा।"

"उसे चोट लगी क्या ?"

"चोट ?" उसने एक बार फिर कमरे में दृष्टि घुमा के देखा और फिर धीमे स्वर में हरदयाल के कानों में बोला, "उसके सिर से लहू बहने लगा।"

हरदयाल कुछ देर के लिये चुप हो गया।

"दीदी कहाँ है जीजाजी !" नवीन ने हरदयाल को चुप देखकर फिर पूछा।

"कहा न घर···उसे भी चोट आई है···पट्टी हो रही है।"

"वह बदमाश पकड़ लिया आपने क्या ?"

"नहीं···" और फिर कुछ रुकते हुए हरदयाल बोला—
"भाग गया है वह।"

"आप उसे ढूंढकर बहुत पीटें उसने दीदी को बड़ा मारा है।"

"क्या ? दीदी···" नवीन ने हताश होकर पूछा।

"हाँ···तुम्हारी सुशील दीदी···हमें छोड़कर चली गई···उस बद-माश ने उसकी हत्या कर डाली···उसे मार डाला।"

"जीजाजी ! नहीं···नहीं···यह झूठ है···मेरी दीदी मरी नहीं।" नवीन ने ऊँचे स्वर में भर्राये हुए कंठ से कहा।

"मैं ठीक ही कह रहा हूँ, बेटा !"

"नहीं, नहीं···" यह कहते हुए नवीन छटपटा कर बलपूर्वक हरदयाल की गोद से निकला और बाहर की ओर भागा। हरदयाल उसके पीछे-पीछे उसे पकड़ने के लिये दौड़ा। स्टेशन के कुछ कर्म-चारियों ने आगे से होकर उसे पकड़ लिया और हरदयाल की गोद में दे दिया। हरदयाल उसे प्यार करके समझाने लगा।

तीन

ओस से भीगी धरती को अभी सूर्य की किरणों ने छुआ ही था कि हरदयाल-रेलवे-यार्ड में पहुँचा। रात भर बोगी पर पुलिस का पहरा था। उसने पहुँचते ही एक सिपाही को वहाँ रखकर शेष को भिजवा दिया।

वह रात भर चिन्तित रहा। इस दुर्घटना ने उसके मस्तिष्क में खलबली-सी उत्पन्न कर दी थी। सुशील की हत्या ने उसे भारी ठेस लगाई थी और कुछ देर के लिए उसकी सोचने की शक्ति को क्षीण कर दिया था। फिर भी वह हत्यारे को खोज निकालने के लिये बेचैन था। उसे अपराधियों के कटहरे में खींच के ले जाना ही न्याय की माँग थी, उस अधखिली कली की पुकार थी और सबसे बढ़कर उस का अपना कर्त्तव्य था।

फ़र्स्ट क्लास के डिब्बे का किवाड़ धकेल कर वह भीतर आया। कमरे की दीवारों, खिड़कियों और हर बिखरी हुई वस्तु से एक अनोखी उदासी टपकती थी, मानो रात के भयानक दृश्य ने इन निर्जीव वस्तुओं पर भी प्रभाव डाला था। फ़र्श पर लहू के धब्बे काले पड़ चुके थे।

हरदयाल ने निराश दृष्टि से कमरे की हर चीज़ का निरीक्षण किया। रात की इस काली घटना का ध्यान आने से उसकी आँखों में आँसू छलक आये। वह पुलिस अफसर था और कोई न कोई दुर्घटना आये दिन देखता ही रहता था। अभी तक किसी मृत को देखकर वह कभी रोया नहीं था, किन्तु सुशील की इस अचानक मृत्यु ने अनायास उसकी आँखें छलका दीं। वह जीवन में पहली बार

उसके पास रहने के लिए आ रही थी। कितनी आशायें लेकर वह भोपाल आ रही थी...उसने और सुलोचना ने मिलकर उसके लिये कितने प्रोग्राम बनाये थे और सब-कुछ राख हो गया। कुछ भी न रहा। सुशील ने आने से पहले उसे पत्र लिखा था जिसमें उसने लिखा था, 'जीजाजी! आपके पास केवल एक शर्त पर आ रही हूँ, और वह यह कि जितने दिन आपके पास रहूँगी आपको दफ़्तर से छुट्टी लेनी पड़ेगी...ऐसा न हो कि हम घर बैठे प्रतीक्षा कर रहे हों और सिपाही सूचना लाये कि साहब किसी डाकू का पीछा करते हुए भोपाल से ग्वालियर चले गये।

हरदयाल ने धैर्य से काम लिया और रूमाल से आँखों में आये हुए आंसुओं को सोखकर फिर से कमरे की प्रत्येक वस्तु का निरीक्षण करने लगा। सीट पर बिछे हुए बिस्तर की सलवटें बता रही थीं कि हत्यारे को अपनी वासना-पूर्ति के लिये बड़ा संघर्ष करना पड़ा है। सहसा उसकी दृष्टि फ़र्श पर गिरे हुए झुमके पर पड़ी। उसने झट झुककर उसे उठा लिया और ध्यानपूर्वक देखने लगा। शायद खींचा तानी में उसके कान से गिर गया होगा। उसने देखा, सुशील का पर्स उसके सिराहने ही रखा हुआ था। इन बातों से यह स्पष्ट था कि हत्यारा चोरी के उद्देश्य से नहीं आया था बल्कि उसका सतीत्व लूटने आया था। उसे याद आया, दूसरा झुमका सुशील के कान में ही था। यह वही सैट था जो उसने उनके व्याह पर बनवाया था, किन्तु इसमें तो एक नैकलेस भी था...पर क्या पता वह उसने पहन रखा था या नहीं।

सीट के पास ही कोने में वह टिफ़िन कैरियर पड़ा हुआ था जिस से नवीन ने उस व्यक्ति पर चोटें लगाई थीं। टिफ़िन कैरियर पर लहू का चिन्ह इस बात का प्रमाण था कि वह व्यक्ति अवश्य घायल हुआ है। फ़र्श पर इधर-उधर बिखरे, अधजले और मसले हुए टुकड़े यह बता रहे थे कि अपना काम कर चुकने के बाद हत्यारा बड़ी देर तक

डिब्बे में ही बैठा अपनी घबराहट को सिग्रेट के धुएँ में उड़ाने का प्रयत्न करता रहा है। उसने झुककर एक मसला हुआ सिग्रेट उठाया और उसका ब्रांड पहचानने का प्रयत्न करने लगा। आधा जला हुआ 'लक्की' का शब्द देखकर उसे यह जानने में कठिनता न हुई कि यह "लक्की स्ट्राईक" सिग्रेट था। उसने सिग्रेट का वह टुकड़ा जेब मे रख लिया।

उसने बड़ी सावधानी से बाथ-रूम में, खिड़की से तथा फ़र्श पर जहाँ कहीं भी अपराधी ने कोई चिन्ह छोड़ा था, उसे उतार लिया। उस ने वह रेशमी रूमाल भी संभाल कर रख लिया जिससे हत्यारे ने नवीन के हाथ बाँधे थे और जिसे वह ले जाना भूल गया था।

अपने ध्यान मे खोया हुआ वह कमरे का निरीक्षण कर ही रहा था कि सहसा हवलदार श्यामलाल ने उसे पुकार कर चौंका दिया। उसने बाहर झाँक कर देखा।

"घर पर सब आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" श्यामलाल ने उस की ओर देखते कहा।

"कौन ?"

"बीबी जी के पिताजी और माताजी।"

"वे कब आये ?" हरदयाल ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा।

"सवेरे···इधर आप निकले, उधर वे आये।"

हरदयाल के मन को धक्का-सा लगा। वह सास और ससुर को क्या मुँह दिखायेगा···उनकी सुशील कहाँ है ! उसी के आग्रह पर उन्होंने उसको यहाँ भिजवाया था। वह जिन कोमल हाथों पर मेंहदी लगाने की सोच रहे थे वहाँ पर उसके दुर्भाग्य ने लहू लगा दिया। यही सोचता हुआ सिर झुकाये वह गाड़ी से उतर आया और घर की ओर रवाना हो गया।

घर में कुहराम मचा हुआ था। सुशील की लाश हस्पताल से घर आ चुकी थी और सब उसकी अन्तिम विदाई की तैयारी में लगे

हुए थे । हरदयाल को साहस न हुआ कि सास ससुर के सामने हो । वह सिर झुका कर चुपचाप एक कोने में बैठ गया ।

नवीन ने उसे चुपचाप बैठे देखा तो उठकर उसके पास आ गया और रुँधे हुये स्वर में दीदी के विषय में बातें करने लगा । उसने हरदयाल से कई प्रश्न किये, किन्तु वह मौन बैठा रहा···उसके पास आँसुओं के अतिरिक्त और उत्तर ही क्या था ।

संसार में हर सुख का अन्त है, हर दुःख की भी सीमा है, किन्तु यह दुःख वह था जिसका शायद कोई अन्त न था···इस शोक को कौन प्रियजन भुला सकेगा···जिस धरती पर उसकी चिता सुलगाई जा रही थी उसने स्वयं उसे एक आँख न देखा था···होनी का कितना बलवान् हाथ था इस भयानक घटना में ।

चिता की लपटें उठीं और देखने वालों के कलेजे फट गये । सब उदास खड़े उस नव पल्लव फूल की राख को धरती से मिलते देख रहे थे । हरदयाल ने दृष्टि उठाई और दूर एक ओर खड़े हुए वसन्त को देखा । उसकी आँखें चिता पर जमी हुई थीं···उसकी आशाओं की चिता···भगवान् जाने वह क्या कुछ सोच रहा होगा···दम्पति जीवन के कल्याण के भवन जो बने भी न थे कि ढह गये हरदयाल, यह विचार आते ही काँप-सा गया और श्मशान से बाहर जाने के लिए मुड़ा ।

फाटक के पास श्यामलाल ने उसे सब से पहले जाते हुए देखकर पूछा—

"आप अभी चल दिये ?"

"हाँ श्यामलाल ! अब यहाँ क्या रखा है ?"

"चिता की आग तो बुझने दीजिए ।"

"यह तो बुझ ही जायेगी···किन्तु यह मन की आग···" यह कहते-कहते यह आगे बढ़ गया, किन्तु दो पग उठाकर रुक गया जैसे कुछ कहना चाहता हो । श्यामलाल उसे खड़ा होते देखकर भाग कर

उसकी बात सुनने के लिये पास आ गया ।

"बीबी जी से कह देना मैं शाम को देर से लौटूंगा।" यह कहकर वह तेज़ डग भरता हुआ पुलिस चौकी की ओर हो लिया । भावुकता में वह भूल ही गया था कि वह सब से प्रथम एक पुलिस अफ़सर है··· उसका कर्त्तव्य यहाँ बैठे शोक मनाने में नहीं, बल्कि जीवित या मृत उस हत्यारे को ढूंढ़ पकड़ने में है। सुशील का अन्त हो गया है, किन्तु उसका काम तो अभी आरम्भ हुआ है ।

पुलिस चौकी से उसने जीप ली और एक सिपाही को साथ लेकर ललितपुर की ओर रवाना हो गया जहाँ उसके अनुमान के अनुसार यह घटना घटी थी। उसने आज सवेरे स्टेशन पर आने से पूर्व नवीन से कई प्रश्न किये थे ।

उसे इस बात का विश्वास हो चुका था कि घटना ललितपुर और बीना के बीच कहीं हुई है। दोनों स्टेशनों के बीच गाड़ी का कोई पौन घण्टा का रन है। इसी बीच में हत्यारे ने उन से झड़प मोल ली नवीन को बाथ-रूम में बन्द कर दिया और अपना काम पूरा करके बैठा सिग्रेट पीता रहा। इससे स्पष्ट है कि वह बीना स्टेशन पर अथवा उसके निकट ही कहीं उतरा है। यह विचार आते ही वह सीधा बीना की ओर रवाना हुआ ।

बीना पहुँचकर उसने रेल की पटरी के साथ-साथ पाँच-छः मील क्षेत्र देखा, विशेष कर वह क्षेत्र जहाँ पर गाड़ी की गति मंद हो सकती थी और उसके चलती गाड़ी से उतरने की संभावना हो सकती थी।

यह उजाड़ क्षेत्र जंगली पेड़ों और झाड़ियों से अटा पड़ा था, पास में कोई पड़ाव या गाँव भी न था जहाँ वह आधी रात को उतर सकता था। इस बात से यह अनुमान लगाया जा सकता था कि वह बीना के स्टेशन पर ही उतरा है और हो सकता है रात वहाँ गुजार कर किसी और गाड़ी से कहीं और चला गया हो ।

छानवीन के लिए वह वीना स्टेशन पर आ गया और स्टेशन मास्टर से अपना परिचय करवाया। स्टेशन मास्टर ने उसकी ओर कुर्सी वढ़ाई। हरदयाल ने वैठते हुए पूछा—

"रात को वम्वई ऐक्सप्रेस कितने वजे आई थी ?"

"वम्वई जाने वाली !"

"जी।"

"साढ़े ग्यारह वजे।"

"उस समय ड्यूटी पर कौन था ?"

"मैं ही था।"

"दिन-रात आप ही ड्यूटी देते हैं क्या ?"

"जी नहीं, दो वार ड्यूटी वदलती है। रात को वारह वजे मेरी ड्यूटी समाप्त हो गई थी और अव शाम को तीन वजे से फिर ड्यूटी पर हूं।"

"ओह समझा···क्या आप को याद होगा, रात वम्वई ऐक्सप्रेस से कितने यात्री उतरे थे ?"

"ठीक याद तो नहीं, यही चार-छः यात्री होंगे।"

"टिकट तो आपने इकट्ठे किए ही होंगे।"

"जी !" स्टेशन मास्टर ने सन्देह भरी दृष्टि से उसे देखा और फिर अलमारी में रखे टिकट निकाल कर उसके सामने रख दिये। कुल सात टिकट थे जिनमें छः थर्ड क्लास के और एक फ़र्स्ट क्लास का था। हरदयाल ने फ़र्स्ट क्लास का टिकिट पलट कर देखा और चौंक-सा गया। टिकट इन्दौर का था। उसने टिकिट को ध्यानपूर्वक देखते हुए कहा—

"यह फ़र्स्ट क्लास का टिकिट तो इन्दौर तक का है ?"

"जी।" स्टेशन मास्टर ने उत्तर दिया।

"यात्री ने अपनी यात्रा वीना में ही समाप्त कर दी।"

"ऐसे ही लगता है।"

"इन्दौर तक के रीफ़ंड के लिए पर्ची तो ली ही होगी आपसे।"

"नहीं तो।"

"कुछ बता सकते हैं आप कैसा व्यक्ति था वह ?"

"कुछ कह नहीं सकता···सैकड़ों व्यक्ति हर दिन आते-जाते हैं···ध्यान नहीं।"

"नौजवान···उलझे-से बाल···खाकी जीन का पतलून और कमर पर चौड़े पट्टे की पेटी ?" हरदयाल ने नवीन का बताया हुआ हुलिया बताते हुए पूछा।

"शायद ऐसा ही था···किंतु विश्वास से नहीं कह सकता।"

"ओह!" हरदयाल लम्बी साँस खींचकर चुप हो गया और फिर खिड़की से बाहर झाँककर प्लेटफ़ार्म पर दृष्टि दौड़ाने लगा। इस बीच में उसने दो-एक बार टिकिट को उलट-पलटकर फिर देखा। स्टेशन मास्टर उसके मुख के बदलते रंगों को देख रहा था और जब बहुत देर तक हरदयाल मौन रहा तो उसने पूछा—

"क्या किसी अपराधी की खोज कर रहे हैं आप ?"

"पुलिस वालों का भला और काम ही क्या हो सकता है ?"

"कोई चोर, डाकू या जेल से भागा हुआ···"

"एक कातिल···हत्यारा···"

"किसकी हत्या ?" स्टेशन मास्टर सहसा चौंक गया।

"रात को जो बम्बई ऐक्सप्रेस यहाँ से गुज़री है उसमें एक हत्या हो गई है।"

यह सूचना सुनते ही स्टेशन मास्टर का मुख पीला पड़ गया, माथे पर पसीना आ गया और नाक पर टिका हुआ चश्मा नीचे खिसक गया। हरदयाल ने मुस्कराकर उसकी ओर देखा और टिकट उसकी हथेली पर रखते हुए उठकर बाहर जाने लगा। उसे उठते हुए देखकर स्टेशन मास्टर संभला और बोला—

"बैठिए अभी···एक कप चाय।"

"धन्यवाद !"

हरदयाल तुरन्त बाहर आ गया और प्लेटफ़ार्म की लम्बाई को ट से नापने लगा। कुछ यात्री और रेलवे के कर्मचारी इधर-उधर न रहे थे। हरदयाल इनको देखते हुए वेटिंग-हाल में जा पहुँचा ार फिर शीघ्र ही बाहर निकल आया।

स्टेशन के बाहर दो सड़कें थी। एक कहीं बाहर की ओर जाती थी ौर दूसरी शहर के भीतर गलियों में जा मिलती थी। आस-पास कोई स्थान ऐसा दिखाई नहीं देता था जहाँ उसका अपराधी रुक सकता। किन्तु, इस बात पर उसे दृढ़ विश्वास हो गया था कि वह उतरा यहीं है यद्यपि उसका स्थान इन्दौर था।

इस दोराहे पर एक छोटी-सी अकेली पनवाड़ी की दुकान थी। हरदयाल कुछ सोचकर उस दुकान पर आ गया और पुलिस वालों की विशेष दृष्टि से दुकानदार को देखते हुए बोला—

"एक पैकेट सिग्रेट।"

"कौनसा बाबूजी ?"

"लक्की स्ट्राईक।"

"बाबूजी ! यह तो नहीं होगा······गोल्ड फ्लैक······कैपस्टन ····कैंची।"

"तो कैपस्टन दो।"

हरदयाल ने पाँच का नोट बढ़ा दिया और डिबिया लेकर झट खोल डाली। पनवाड़ी के पास फुटकर न था उसने दुकान के पीछे छप्पर की झोंपड़ी में से पत्नी को पुकार कर नोट उसे देते हुए भीतर से फुट-कर लाने के लिए कहा। हरदयाल ने सोचा, लोग दिन-रात यहीं रहते हैं। उसने सिग्रेट सुलगा कर पनवाड़ी से पूछा—

"लक्की ब्रांड यहाँ नहीं चलता क्या ?"

"नहीं बाबूजी ! किन्तु अब रखना ही होगा।"

"क्यों···अब ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी है ?"

"अभी आपने माँगा है···रात को एक बाबूजी ने भी यही ब्रांड माँगा था।"

"कौन बाबूजी ?"

"कोई युवक था रात को आया था।"

"कैसी सूरत थी ?"

"उलझे हुए से बाल···मोटी-मोटी आँखें, कमर पर छः इंच चौड़ा पट्टा पहने हुए था।"

"क्या सिर पर कोई घाव भी था उसके ?" हरदयाल ने उसे चुप होते देखकर पूछा।

"हाँ···किन्तु ;आप यह सब क्यों पूछ रहे हैं ?" पनवाड़ी कुछ डर गया।

'मैं इसी व्यक्ति को खोज रहा हूँ "

"किन्तु, मैं तो उसे जानता भी नहीं···सवेरे से शाम तक कितने ही व्यक्ति···।"

"घबराओ नहीं···"हरदयाल ने उसकी बात को बीच में ही काट दिया और बोला, "मेरा मित्र था···दिमाग में खराबी है···अचानक गाड़ी से उतर गया है···।"

"वह युवक तो रात को आया था···अब नहीं "

"मैं भी तो रात की ही बात करता हूँ···बम्बई ऐक्सप्रेस पर···कोई ग्यारह साढ़े ग्यारह का समय होगा। मेरी अचानक आँख लग गई। जब अगले स्टेशन पर आँख खुली तो देखा वह वहाँ नहीं था। सहयात्रियों ने बताया कि वह बीना उतर गया था।"

"ओह तब तो वही होगा···पागल और खोया-खोया-सा दीखता था। जैसा आपने बताया है, उसके सिर पर घाव भी था। गर्म कपड़े से घाव को सेकता भी रहा। मैंने पत्नी से हल्दी भी गर्म करवाकर उसके घाव पर लगवा दी थी···कहता था, चलती गाड़ी

में उतरते हुए पाँव फिसल गया है।"

"पागल कहीं का···यही बात दूसरे सहयात्रियों ने मुझ से कही थी···मेरा अनुमान ठीक ही था, उसके सिर ही पर चोट आई है।"

"मैंने उसे डाक्टर के पास जाने के लिए कहा किन्तु वह बोला, स्वयं ठीक हो जाएगी, ऐसी चोटें तो प्राय: लगा ही करती हैं।"

हरदयाल ने वहाँ खड़े-खड़े तीन सिग्रेट फूंक डाले। पनवाड़ी ध्यान से गंभीर और चिन्तित मुख को देख रहा था। बड़ी देर मौन रहा और फिर हरदयाल ने चारों ओर दृष्टि घुमाकर पूछा—

"कुछ याद है, यहाँ से वह किधर गया था ?"

"कह नहीं सकता...बहुत देर यहीं बैठा रहा और फिर टहलता हुआ शहर की ओर चला गया। इन्दौर जाने वाली गाड़ी का समय पूछ रहा था।"

"उसके बाद कोई गाड़ी इन्दौर जाती है क्या ?"

"जी सवेरे चार बजे पैंसिजर जाती है और इसके बाद नौ बजे मद्रास ऐक्सप्रेस।"

हरदयाल को विश्वास हो गया कि हत्यारा इन्दौर ही जा रहा था और अवश्य किसी गाड़ी से चला गया होगा। किन्तु, उसने इन्दौर का टिकिट क्यों दे दिया ? इस बात ने उसके मस्तिष्क में कुछ चिन्ता-सी उत्पन्न कर दी...हो सकता है वह इन्दौर के स्थान पर कहीं और ही चला गया हो...

उसने शहर के होटलों और धर्मशालाओं की छानबीन भी कर ली, किन्तु अपराधी का कोई चिन्ह न मिला। शाम होती जा रही थी और सुबह वह घर में बिना किसी को मिले-जुले ही चला आया था इसलिए वह अपनी खोज को अधूरा छोड़कर भोपाल लौट गया। पुलिस चौकी में हवलदार श्यामलाल बैठा बड़ी बेचैनी से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने उसके आते ही सूचना दी—

"घर पर सब आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं...बहूजी को दो बार

बेहोशी का दौरा पड़ चुका है।"

हरदयाल चुप रहा। घर जाने से पहले उसने एकबार फिर डिब्बे में मिली सब वस्तुओं को ध्यानपूर्वक देखा। उसने सोचा हो सकता है उसे कोई ऐसी कड़ी मिलजाये जिसके द्वारा अपराधी की खोज सहज हो जाये। निरीक्षण करते हुए सहसा उसकी दृष्टि रूमाल के कोने पर कढ़े हुए किसी शब्द पर जा पड़ी जिसने उसे चौंका दिया। उसने ध्यान से देखा, लाल रेशमी धागे से अंग्रेज़ी में 'स्टैला' का शब्द बना हुआ था। यह किसी स्त्री का नाम लगता था। मन ही मन उसने एक बार इस नाम को फिर दोहराया और पुलिस चौकी से बाहर निकल गया।

घर पहुँचा तो शाम हो चुकी थी। सभी उसकी राह देख रहे थे। बाबू जी ने देर से आने का कारण पूछा तो हरदयाल ने उत्तर दिया—

"पुलिस की कार्यवाही कुछ पूरी करनी थी।"

"कुछ पता चला हत्यारे का ?"

"अभी तो छानबीन आरम्भ हो रही है।"

"ओह ! एक बात है।" बाबूजी ने रुकते-रुकते कहा।

"कहिये ?"

"क्या यह सम्भव नहीं कि यह सूचना अखबारों में न आये ?"

"क्यों ?"

"सुशील तो चली गई···अब परिवार के नाम को क्यों धब्बा लगे ?"

मैंने रिपोर्टर से मना तो कर दिया है। यदि सूचना आई भी तो नाम-पता न आयेगा।"

"जैसा तुम उचित जानो।"

हरदयाल कपड़े बदलने को बढ़ा ही था कि बाबूजी की आवाज़ ने उसे रोक दिया—

"आज सुलोचना को फिर बेहोशी का दौरा पड़ा था।"

"अब कैसी है ?"

"ठीक है।"

"आप लोगों का क्या प्रोग्राम बना ?"

"सुबह की गाड़ी से कानपुर लौट जायेंगे।"

"मैं चाहता हूँ, आप सुलोचना को भी कुछ समय के लिए साथ ले जायें।"

"यह तो हम पहले ही सोच रहे हैं। क्रिया अठारह तारीख को बनती है।"

"मैं तब तक आ जाऊँगा।"

यह कहकर हरदयाल साथ वाले कमरे में आया। सुलोचना फ़र्श पर शोक की मूर्ति बनी बैठी थी। आहट होते ही उसने ऊपर दृष्टि उठाई। और पति का मलीन मुख देखकर फिर से दृष्टि झुका ली। हरदयाल उसके व्यथित मन की दशा को भली-भांति समझता था। किन्तु चुप था। बड़ी देर किसी ने एक-दूसरे से कोई बात न की। आखिर सुलोचना ने भर्राई हुई आवाज़ से कहा—

"बाबूजी कल जा रहे हैं।"

"इतनी जल्दी ?" हरदयाल ने यूँ ही बात चालू रहने के लिए पूछा, वरन् बाबूजी तो स्वयं उसे कह चुके थे।

"उनका विचार है, अन्तिम रीति कानपुर में ही हो।"

"जैसी उनकी इच्छा।"

"किन्तु एक बात का तुम ध्यान रखना।"

"क्या ?"

"सुशील तो लौट कर न आयेगी...तुमने अपने स्वास्थ्य का ध्यान न रखा तो यह अच्छा न होगा।"

सुलोचना चुप रही और मुँह फेर कर दूसरी ओर देखने लगी। उस की आंखों में आंसू भर आये थे। हरदयाल ने उसके कंधे पर हाथ रखा और सांत्वना देते हुए बोला—

"गाड़ी में यह दुर्घटना क्योंकर हुई...यह किसी से कहने की आवश्यकता नहीं...लोगों से वही कुछ कहा जाये जो बाबूजी कहें।"

सुलोचना रो पड़ी और उठकर दूसरे कमरे मे चली गई। हरदयाल वहीं खड़ा उसे देखता रहा। उसमें इतना साहस न था कि उस से और कोई बात कर सके। बात-बात पर बेचारी के आँसू उमड़ आते थे, झड़ी लग जाती थी...घाव, ताजा घाव और फिर इतना गहरा... बेचारी विवश थी। हरदयाल अधिक समय तक वहाँ न ठहर सका और उदास नवीन को साथ लेकर घर से बाहर सैर के लिये निकल गया।

चार

हरदयाल इन्दौर जा रहा था। गाड़ी में बैठा वह खिड़की से बाहर भागती हुई चीजों को देख रहा था जो स्थिर थीं, किन्तु फिर भी समय चक्र में भागती हुई दिखाई दे रही थीं।

वह अति उदास था। दो दिन से कुछ खाया न था। उसका हृदय पीड़ा से कराह रहा था। वह जी भर कर रो भी न सका था, जिसके कारण उसके मन पर बोझ-सा जम गया था।

सुलोचना सुबह की गाड़ी से बाबूजी के साथ कानपुर चली गई थी। उसने उनसे कहा था कि वह 'क्रिया' तक वहाँ पहुँच जायेगा और यदि किसी कारण से न पहुँच सका तो वह उसकी प्रतीक्षा न करें। उसे अपने कर्त्तव्य को मंजिल तक पहुँचाना है। सुशील का हत्यारा केवल उनकी आकांक्षाओं पर छापा डालने वाला ही नहीं था बल्कि कानून का अपराधी था...उसे न्याय के सामने लाना उसका परम कर्त्तव्य था और इस कर्त्तव्य-पालन के लिये वह कोई चूक न करेगा।

उसने जेब में हाथ डाल कर एक कागज निकाला और उसे देखने लगा। यह बिना नाम का वारंट था, बलात्कार और हत्या करने के अपराध में। हत्यारे का नाम-पता न ज्ञात होने के कारण उसने ऐसा वारंट बनवा लिया था जिससे आवश्यकता पड़ने पर शीघ्र ही उसे काम में ला सके। थोड़ी देर बाद उसने वारंट को फिर जेब में रख लिया और जेब में रखी हुई पिस्तौल को हथेली से टटोलते हुए खिड़की से बाहर देखने लगा। उसके मस्तिष्क में कोलाहल मचा था। वह चिन्तित था, उसकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। वह हत्यारे को

क्योंकर पकड़े जिस की उसने सूरत तक नहीं देखी थी। इतना लम्बा-चौड़ा देश है, न जाने वह कहाँ चला गया होगा। बस, इन्दौर के टिकिट और रूमाल पर कढ़े हुए 'स्टैला' के शब्द पर ही वह उसे खोजने निकल पड़ा था। यदि वह उसे खोज निकालने में असमर्थ रहा तो क्या होगा? ऐसे ही विचार मस्तिष्क में बसाये वह इन्दौर की ओर बढ़ा चला जा रहा था।

लगभग दिन के दस बजे का समय होगा जब गाड़ी इन्दौर के रेलवे स्टेशन पर पहुँची। हरदयाल अपनी अटैची उठाकर गाड़ी से उतर आया और सीधा पुलिस चौकी पर पहुँचा। कोई भी कार्यवाही आरम्भ करने से पहले उस क्षेत्र के माने हुए अपराधियों के विषय मे जानकारी प्राप्त करना आवश्यक था।

पुलिस चौकी के इन्चार्ज मिस्टर किदवाई ने उसका स्वागत किया। यद्यपि दोनों ने इस से पहले एक-दूसरे को देखा नहीं था, तथापि वह एक दूसरे के नाम से भली भाँति परिचित थे। जब मिस्टर किदवाई को हरदयाल ने इन्दौर आने का कारण बताया तो उसने उसे हर प्रकार की सहायता देने का वचन दिया।

हरदयाल ने जेब से बिना नाम का वारंट निकाल कर किदवाई के सामने रख दिया।

"किन्तु यह कैसे संभव है?"

"क्या?"

"अपराधी को पकड़ना जब कि उसका कोई नाम-पता न हो।"

"यही तो समस्या है जिसे सुलझाना है।"

"यह हत्या हुई कैसे?"

"यह कभी फिर बताऊँगा...हाँ मेरे लिए दुर्भाग्य की बात यह है कि जिसकी हत्या हुई है वह मेरी साली थी।"

"हरदयाल!" किदवाई ने आश्चर्य-चकित हरदयाल की ओर देखते हुए कहा, जैसे इस बात ने उसके मस्तिष्क पर हथौड़ा-सा मार

दिया हो ।

"मिस्टर किदवाई ! एक प्याला चाय का मिल जायेगा यहाँ ?"

"ओह ! क्यों नहीं । क्षमा कीजिये । यह तो मुझे स्वयं ही पूछना चाहिये था ।" यह कह कर मिस्टर किदवाई ने सन्तरी को चाय लाने के लिए पुकारा और फिर कोई उत्तर न पाकर बोला, "आइये... साथ ही कैन्टीन है, वहीं चलते हैं ।"

दोनों उठकर पुलिस लाइन की कैन्टीन में जा बैठे और एक कोने में बैठकर धीरे-धीरे चाय पीने लगे । किदवाई हरदयाल के गम्भीर मुख का निरीक्षण कर रहा था । उसके मन की दशा उसके चेहरे पर अंकित थी । किदवाई ने बड़ा प्रयत्न किया कि उसके मुँह से घटना की पूरी बात सुने, किन्तु हरदयाल टाल ही गया । वह अपने घावों को स्वयं ही छेड़ कर हरा नहीं करना चाहता था ।

हत्यारे से पहले स्टैला का पता लगाना आवश्यक था । नाम से स्पष्ट था कि लड़की कोई क्रिश्चियन है...हो सकता है कोई ऐंग्लो-इंडियन हो । उसका मन कह रहा था कि लड़की है कहीं इन्दौर में ही । यहाँ बहुत-से ऐंग्लो-इंडियन बसे हुए थे जिनमें से इस नाम की कई लड़कियाँ होंगी । कुछ देर यूँ ही सोचते रहने के बाद हरदयाल ने पूछा—

"मिस्टर किदवाई ! यहाँ क्रिश्चियन और ऐंग्लो-इण्डियन तो बहुत होंगे ?"

"असंख्य...ऐंग्लो-इण्डियन हैं ।"

"इनकी कोई विशेष बस्ती है क्या ?"

"अधिकतर रेलवे में नौकर हैं...रेलवे कालोनी में अस्सी प्रतिशत वही लोग आबाद हैं ।"

"इतनी बड़ी आबादी में किसी को खोजना हो तो..."

"क्या हत्यारा..."

"नहीं, ऐसी बात नहीं, किन्तु उसका सम्बन्ध यहाँ की किसी

लड़की से अवश्य है।"

"कैसे ?"

"हत्यारे का एक रूमाल मिला है जिसपर उस लड़की का नाम है।"

"क्या ?"

"स्टैला !"

"ओह ! नाम तो अवश्य सुना है···भेंट भी हुई होगी, किन्तु ठीक नहीं कह सकता, कहाँ ?"

"इस नाम की दो-चार लड़कियाँ भी तो हो सकती हैं।"

"अवश्य···किन्तु, वह लड़की कोई असाधारण न थी···ऐसे ही याद पड़ता है।" किदवाई ने मस्तिष्क पर जोर देते हुये कहा, "एक बार किसी केस के विषय में उसे देखा है···नाम तो कुछ अच्छा सुना हुआ लगता है···हाँ···हो सकता है वही हो।"

"कैसा केस था वह ?"

"शायद कहीं चोरी हो गई थी···साक्षी के रूप में इस लड़की से भेंट हुई थी।"

"क्या आप कष्ट करके इस लड़की से भेंट नहीं करा सकते ?"

"कष्ट की कोई बात नहीं···आप एक काम कीजिये।"

"क्या ?"

"कल रेलवे क्लब में चले आइये।"

"वहाँ किस लिए ?"

"क्रिस्मस के दिन हैं···सभी वहाँ मिल जायेंगे।"

"किन्तु, इतनी भीड़ में उसे कैसे···?"

"प्रयत्न और आशा···इन्हीं पर तो हमारा सब कुछ निर्भर है।"

"तो वहाँ रात के खाने पर कहीं से निमन्त्रण-पत्र प्राप्त करना होगा।"

"इसका प्रबन्ध हो जायेगा···कहिए तो डिनर सूट भी मँगवा दूँ।"

"ऐसा हो जाये तो बड़ी कृपा होगी।"

किदवाई ने हरदयाल को रात अपने यहाँ ठहरने का आग्रह किया, किन्तु हरदयाल उसको कष्ट न देना चाहता था ; दूसरे अपनी काम करने की विधि पर विचार करने के लिए उसे एकांत की आवश्यकता थी जो दूसरे के घर में अतिथि बनकर प्राप्त होना कठिन था, इसलिए रैस्ट हाउस में ही अपना डेरा जमा दिया।

शाम को कुछ सोचकर वह टहलता हुआ रेलवे कालोनी की ओर चला। साफ़-सुथरी छोटे-छोटे क्वार्टरों की वह बड़ी सुन्दर कालोनी थी। वास्तव में यहाँ बसने वाले ऐंग्लो-इंडियन ही थे। उसके पास ही से रंगदार ब्लाउज और साये पहने हुए साईकिल पर कुछ लड़कियाँ गुज़र गईं। वह दृष्टि बचाकर आने-जाने वालों को देख रहा था। उसके कान 'स्टैला' के नाम की भनक सुनने के लिए उत्सुक थे, किन्तु उसे निराश होना पड़ा।

कालोनी की सड़कों को नापता हुआ वह रेलवे क्लब तक जा पहुँचा। क्रिस्मस के लिए क्लब को दुल्हन के समान सजाया जा रहा था। बाहर लॉन में कुछ व्यक्ति बैठे हुए शराब पी रहे थे। एक ओर कुछ लोग ताश खेल रहे थे। लड़कियाँ क्लब के बरामदे में नाच का अभ्यास कर रही थीं।

हरदयाल चुपचाप एक ओर बिछी हुई खाली कुर्सी पर बैठ गया। कुछ देर बाद एक बैरा उसके पास आया और झुक कर बोला—

"सर !"

"सोडा···"

"और व्हिस्की ?" बैरे ने उसे चुप होते देखकर पूछा।

"केवल सोडा।"

बैरा आश्चर्य से क्लब में इस नये आये हुये व्यक्ति को देखने लगा जो केवल सोडा माँग रहा था बिना व्हिस्की, रम या ब्रांडी वह जाने के लिए मुड़ा ही था कि हरदयाल ने उसे रोक दिया—

"और हाँ, एक पैकेट गोल्ड फ्लेक।"

"यस सर !"

बैरा चला गया और थोड़ी देर बाद एक ट्रे में सोडा और एक पैकेट सिग्रेट का लेकर आ पहुँचा। हरदयाल ने बटुवे में से पाँच रुपये का नोट निकाल कर उसकी ट्रे में रख दिया और धीरे-धीरे सोडा पीने लगा। थोड़ी देर बाद बैरा ट्रे में शेष फुटकर लिये हुये आया और ट्रे उसके सामने बढ़ा दी। हरदयाल ने एक दृष्टि ट्रे में रखे पैसों पर डाली और दूसरी बैरा पर, फिर मुस्करा कर उसे पैसे उठा लेने का संकेत किया।

बैरे ने झुककर 'थैंक्यू' कहा और पैसे जेब में डालकर चला गया।

हरदयाल ने सिग्रेट सुलगा कर एक लम्बा कश खींचा और धुएँ को छोड़कर बरामदे में नाचती हुई लड़कियों को देखने लगा। उसने सोचा, हो सकता है इन्हीं में उसकी 'स्टैला' भी हो···इस विचार से उस की आँखों में एक चमक-सी आ गई।

थोड़ी दूर वही बैरा खड़ा उसकी ओर देख रहा था। हरदयाल ने संकेत द्वारा उसे अपने पास बुलाया और दबे स्वर में पूछने लगा—

"तुम यहाँ कब से हो ?"

"कोई पाँच-छः बरस से···सर !"

"क्या नाम है तुम्हारा ?"

"डेविड, सर !"

"ओह ! डेविड···आज मिस स्टैला आई थी क्या ?"

"स्टैला ? कौन-सी स्टैला ! स्टैला थामसन या स्टैला जानसन?"

"थामसन···"

" नहीं सर !"

"और जानसन ?"

"वह तो अभी डांस कर रही थी सर !"

"देखो डेविड !" उसने डेविड को और निकट बुलाते हुए धीरे

से कहा, "मिस जानसन को थोड़ा बुला लाओ।"

"सर!" डेविड सिर झुका कर बरामदे की ओर चला गया। उस के मुड़ते ही हरदयाल अपनी कुर्सी से उठकर पास ही मोटे पेड़ के तने के पीछे अँधेरे में छिप कर खड़ा हो गया। थोड़े ही समय बाद बैरा एक अधेड़ आयु की भारी-भरकम महिला को लेकर वहीं आ गया जहाँ वह अभी-अभी हरदयाल को छोड़कर गया था और कुर्सी को खाली देखकर आश्चर्य से इधर-उधर देखने लगा।

"कहाँ है वह साहब?" उस महिला ने मुंह में रखी च्यूइंग-गम को चबाते हुए पूछा—

"अभी यहाँ बैठा था मिस साहब! हमसे बोला—"मिस जानसन को बुलाओ।"

"ईडियट! हमको कौन बुलायेगा?" मिस जानसन नाक सिकोड़ कर फिर बरामदे की ओर लौट गई। बैरा आश्चर्य-चकित कुछ देर खड़ा उसी कुर्सी की ओर देखता रहा और फिर बरामदे में वापस चला गया। उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था कि हरदयाल कहाँ चला गया आखिर।

कुछ समय के बाद वह फिर लौटकर वहीं आया और हरदयाल को दोबारा अपनी कुर्सी पर बैठा देखकर भौंचक्का रह गया। वह निश्चिन्त बैठा सिग्रेट पी रहा था। उसे यूँ मौन खड़ा देखकर हरदयाल ने पूछा—

"क्या हुआ डेविड?"

"वह आई थी अभी सर!"

"कौन?"

"स्टैला जानसन।"

"ओह नो, नो···आई ऐम सारी···मुझे मिस थामसन से मिलना है।"

"वह तो आज नहीं आई।"

"कल आयेगी क्या ?"

"रात को तो पता नहीं,...हाँ शाम को वह प्रति दिन टेनिस खेलने आती है।"

"तुम यहीं होते हो ?"

"यस सर !"

"तो मैं कल आऊंगा।"

यह कहकर हरदयाल उठ खड़ा हुआ और बाहर रेल की पटरी के साथ-साथ पुलिस चौकी की ओर बढ़ने लगा। रात का अँधेरा शहर को अपनी मैली चादर में लपेट चुका था। रेलवे कालोनी के क्वार्टरों से निकलता हुआ उजाला यूँ प्रतीत हो रहा था मानो बहुत से रेल के डिब्बे एक साथ खड़े कर दिये गये हों।

सहसा चलते हुए उसके विचारों का तांता टूट गया। एक रेल-गाड़ी गरजती-गूंजती बड़ी तेज़ गति से उसके पास से गुजर गई। हरदयाल के मस्तिष्क में एकाएक उस भयानक दुर्घटना की याद दौड़ गई। ऐसे ही चलती गाड़ी में सुशील की हत्या हुई थी...ऐसी ही आवाज़ों में उस अबला की पीड़ा-भरी आवाज़ दब कर रह गई थी। उसके मस्तिष्क पर निरन्तर चोटें लगने लगी हत्यारा...खूनी... अपराधी...चौड़ी बैल्ट...लम्बी ब्रांड...सिर पर घाव...स्टैला... विचारों की एक रेलगाड़ी-सी चल रही थी जिसे रुकने को कोई स्टेशन नहीं मिल रहा था।

वह सोचने लगा, स्टैला टेनिस खेलती है...हर शाम को वह क्लब में आती है...वह स्वयं भी तो टेनिस का अच्छा खिलाड़ी है ...इसी सम्बन्ध से हत्यारे का पता लग जाना कुछ बड़ा कठिन न था ...किन्तु, क्या यह वही स्टैला है ? उसका मन कह रहा था कि वह अपनी खोज के पथ पर पहुँच गया है।

आज रात उसे आराम की नींद आई। वह कई दिन से चिंतित था। उसका शरीर थक कर चूर हो गया था। उसकी मंज़िल अब

४:

... ही थी। उसने सोचा, प्रकृति स्वयं ही उसकी सहायता कर ...। यह उसका कर्त्तव्य भी है···वह शीघ्र ही हत्यारे को पकड़ ... उसे न्याय के सम्मुख खींच लायेगा।

...रे दिन शाम होते ही वह क्लब जा पहुँचा। उसने किदवाई ...हीं से एक रैकिट भी मँगवा लिया और स्पोर्ट्स ड्रैस भी। ... लोगों से बिल्कुल अपरिचित था, किंतु फिर भी क्लब में यूँ ... था मानो सब को जानता हो और क्लब का स्थायी मेम्बर ...सके मन में एक विशेष दृढ़ता थी।

...ब में आते ही कल वाले बैरे से सामना हुआ। उसने देखते ... झुक कर सलाम किया और फिर बोला—

"...र ! मिस थामसन—"

"...ा गई क्या ?"

"...स सर···उधर टैनिस खेल रही है।"

...दयाल रैकिट थामे हुए टैनिस कोर्ट की ओर बढ़ा। लॉन के ... दो-चार व्यक्ति बैठे खेल देख रहे थे। हरदयाल ने एक गहरी ...न पर डाली और फिर खेलने वालों का निरीक्षण करने लगा। ...क और एक युवा एक ओर और ऐसा ही एक जोड़ा दूसरी ओर खेल में व्यस्त था। गेंद उछल कर कभी इस ओर और कभी उस ओर जाती थी। खेल अच्छा रोचक था।

हरदयाल ने ध्यानपूर्वक दोनों युवतियों और उनके पार्टनर को निहारा। एक इनमें छोटी आयु की थी और दूसरी कुछ बड़ी लग रही थी। छोटी वाला सुन्दर और पहली से चटक थी। हरदयाल की दृष्टि उस पर जम गई। यही स्टैला थामसन हो सकती है, उस ने मन ही मन सोचा। और उसका अनुमान सत्य निकला। पहली 'गेम' इसी युवती और उसके पार्टनर ने जीती और देखने वाले सहसा बोल उठे, "वैल डन···स्टैला···वैल डन।"

पहली गेम जीतने के बाद साइडें बदली गईं। स्टैला और उसके

पार्टनर [redacted] विरुद्ध एक नया जोड़ा आकर खेलने लगा। यह खेल पहले से अधिक रोचक था, इसलिये कि नये खेलने वाले अच्छे खिलाड़ी थे। किंतु, स्टैला और उसके पार्टनर के शाट्स के सम्मुख उन्हें भी शीघ्र कोर्ट छोड़नी पड़ी। एक बार फिर देखने वालों ने तालियों से स्टैला के खेल की प्रशंसा की।

हरदयाल ने अपने मस्तिष्क में स्टैला का कोई अच्छा चित्र नहीं बना रखा था, किंतु, इस खेल ने, उसकी सूरत ने, इस चित्र को एकाएक बदल दिया। वास्तव में वह अति सुन्दर खेल रही थी और हरदयाल भी उसकी प्रशंसा किये बिना न रह सका। उसकी अपनी उँगलियाँ खेलने के लिए रैकेट पर मचलने लगीं।

तीसरे खेल में हरदयाल ने खेलने की इच्छा प्रकट की और तुरन्त ही उसे इसकी अनुमति मिल गई। नया खिलाड़ी दर्शकों के लिये सदा उत्सुकता का कारण होता है। खेल में उसकी साथी बनने के लिये मिस जोडफ़ की बारी थी। दोनों ने मुस्करा कर एक दूसरे से हाथ मिलाते हुए अपना परिचय कराया। मुकाबले में मिस स्टैला अपने पार्टनर के साथ खड़ी हँस-हँस कर बातें कर रही थी।

रैफरी ने सीटी लगाई और चारों खिलाड़ी अपने अपने स्थान पर डट गये। खेल आरम्भ हुआ और शीघ्र ही जम गया। हरदयाल स्टैला के हर शाट् का समान उत्तर दे रहा था। शीघ्र ही उसके खेल ने दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। स्टैला का खेल भी कोई कम न था। यद्यपि पहले दो गेम्ज़ खेल कर वह थक चुकी थी, तथापि उसने हरदयाल के हर शाट् का जी-जान [redacted] मुकाबला किया। इस खेल में स्टैला की हार हुई। खेल तो 'डबल्ज़' का था किन्तु गेंद अधिकतर स्टैला और हरदयाल के बीच ही उछलती रही।

दूसरा खेल आरम्भ होने से पूर्व दर्शकों ने सिंगल्ज़ मैच का शोर मचाया। पहले खेल में भी इन दोनों को छोड़ कर दूसरे खिलाड़ी केवल नाममात्र थे। हरदयाल ने मुस्करा कर स्टैला की ओर देखा

"थैंक्यू…यू डिज़र्व इट मोर।"

स्टैला ने मुस्करा कर उसकी ओर देखा।

दर्शकों ने तालियों से दोनों का स्वागत किया। स्टैला ड्रैस बदलने के लिये बाथ-रूम की ओर जाती हुई बोली —

"आप जाइयेगा तो नहीं अभी मिस्टर हरदयाल!"

"कहिये।"

"मैं अभी आई…आप इनके साथ लॉन में चलिये…जोजेफ़! तुम कोल्ड ड्रिंक्स का आर्डर दो।" उसने मिस जोजेफ़ को संकेत करते हुए कहा।

स्टैला ड्रैस बदलने चली गई और हरदयाल दूसरे खिलाड़ियों के साथ लॉन में बैठा उसी के विषय में सोचने लगा। स्टैला कोई साधारण खिलाड़ी न थी…उसने भी उसके मन पर अपना प्रभाव अंकित कर दिया है…निःसंदेह उसकी खोज का काम सरल हो गया था।

पाँच

शाम गहरी होती जा रही थी। हरे-भरे घास के लॉन में एक ओर लगी मेज़ पर हरदयाल और स्टैला सामने रखे गिलासों में से घूंट-घूंट बीयर पी रहे थे। उसके सब साथी चले गए थे और वे अकेले ही रह गए थे। वे एक ही बैठक में एक दूसरे के बहुत निकट आ गये थे। स्टैला उसके सुन्दर खेल से प्रभावित होकर मन ही मन उसका आदर करने लगी थी। इस उत्तम श्रेणी का खिलाड़ी उसने अभी तक नहीं देखा था। दोनों चुपचाप बैठे पिये जा रहे थे। आखिर बहुत देर के मौन को हरदयाल ने तोड़ा—

"मौन बैठी क्या सोच रही हैं ?"

"कुछ भी तो नहीं।"

वह यह कहकर क्षण भर के लिये चुप हो गई और फिर बोली, "सोच रही हूँ, कैसी विचित्र भेंट है यह भी !"

"किसकी भेंट ?"

"हम दोनों की···दो अनजान व्यक्ति जो कल तक एक-दूसरे से परिचित भी न थे मित्र बन गये।"

"शायद प्रकृति को हमारी यह मित्रता भा गई है।"

स्टैला मुस्करा पड़ी और बोली—

"आप पहले तो कभी क्लब में नहीं आये ?"

"नहीं···आज यूँ ही चला आया था···आप का खेल देख कर उँगलियाँ मचल पड़ीं और रैकिट उठा लिया।"

"अच्छा किया आपने···यह घमण्ड तोड़ तो दिया···मैं जान रही थी इन्दौर में मुझसे बढ़कर कोई खिलाड़ी ही नहीं।" स्टैला ने

हँसते हुए कहा।

"यह तो यूँही अकस्मात् की जीत थी" वरना आपका मुकाबला।"

"यह तो आप बना रहे हैं मुझे···" स्टैला ने कहते हुए बोतल से और बीयर हरदयाल के गिलास में उँडेलदी।

"बस और नहीं।" हरदयाल ने इन्कार करते हुए कहा।

"क्यों ? इतनी जल्दी ?"

"बस इतनी ही पी सकता हूँ···इससे अधिक नहीं···शरीर सहन नहीं करता।"

"यह कैसे हो सकता है?" उसने दरयती आँखों से देखते कहा।

"क्यों नहीं···इसमें न होने की कौनसी बात है ?" हरदयाल ने गिलास मेज पर रखते हुए मुस्करा कर पूछा।

"आप युवक हैं और फिर स्पोर्ट्स-मैन हैं···"

"तो···"

"तो आपके पास धैर्य है, साहस है, बल है···इतनी सी बीयर क्या बिगाड़ेगी आपका ?"

"बिगाड़ने की बात नहीं···अच्छी ही नहीं लगती···और यह धैर्य की बात आपने ठीक कही···धैर्य न होता तो यह प्याला कब का फूट चुका होता।" हरदयाल के मुँह से अचानक ही पिछला वाक्य निकल गया।

"कैसा प्याला ! मिस्टर हरदयाल।"

"यूँ ही···ना जाने मन में क्या आया और क्या कह गया।" हरदयाल को सहसा अनसोची बात कहे जाने का भान हुआ।

दोनों फिर चुप हो गये घूँट-घूँट बीयर पीने लगे। कुछ देर बाद हरदयाल ने पूछा—

"इन्दौर में रहते हुए कितने बरस हो गये आपको ?"

"पाँच बरस।"

"अकेली हैं या···"

"नहीं···ममी मेरे साथ रहती हैं···मेरे पापा रेलवे में गार्ड थे।"

"और अब ?"

"अब वह इस संसार में नहीं।" वह एक निःश्वास खींचते हुए बोली, "कोई दो वर्ष हुए, हृदय-रोग से उनका देहान्त हो गया "

"आह ! और अब आप···"

"रेलवे हस्पताल में डाक्टर हूँ।"

"बहुत अच्छा···तब तो घबराने का कोई कारण नहीं।"

"अर्थात् ?"

"अर्थात्···कहीं चोट-चोट लग गई तो देख-भाल कर लेंगी।" हरदयाल ने होठों पर शरारतभरी मुस्कान लाते हुए कहा :

"जी···"वह घबरा गई।

"मेरा अभिप्राय: था खेल में···खिलाड़ी जो ठहरे।"

इस पर दोनों एक साथ हँसने लगे और जाने के लिए उठ खड़े हुए। हरदयाल ने फ़र्श पर रखा हुआ रैकिट स्टैला को थमा दिया।

"थैंक्यू।" स्टैला ने मुस्कराते हुए उसकी ओर देखा और फिर झट बोली, "कल आइयेगा ?"

"प्रयत्न करूँगा।"

"अच्छी बात···"

हरदयाल उससे अलग होकर तेज़-तेज़ पाँव उठाता हुआ उससे आगे फाटक से बाहर निकल आया और अंधेरे में एक ओर छिप कर उसकी प्रतीक्षा करने लगा। स्टैला रैकिट को लहराती हुई बाहर निकली और धीमे स्वर में कुछ गुनगुनाती हुई उस मार्ग की ओर हो ली जो रेलवे क्वार्टरों की ओर जाता था। उसके पाँवों में एक विचित्र स्फूर्ति थी।

जब वह थोड़ा आगे निकल गई तो हरदयाल अंधेरे की ओट में से निकला और उसका पीछा करने लगा। अचानक जहाँ कहीं भी उसके पाँव रुक जाते, वह झट घूमकर दूसरी ओर हो जाता। वह बिना पीछे मुड़कर देखे बढ़ी जा रही थी। रेलवे का फाटक लांघ कर वह पग-

डंडी पर रेल की पटरी के साथ-साथ हो ली । यह रास्ता अँधेरा था किन्तु छोटा था और आगे थोड़ा दायें घूमकर सीधा रेलवे क्वार्टरों कि चला जाता था ।

आगे जाकर रेलवे क्वार्टरों की पंक्तियाँ आरम्भ हो गईं । स्टैला एक ओर मुड़कर एक घर में चली गई । थोड़ी देर में हरदयाल भी उसी घर के द्वार पर खड़ा था । भीतर से धीमी-सी बिजली की रोशनी छनकर गली में आ रही थी । भीतर से एक भारी-सी किसी महिला की आवाज आई—

"कौन ? स्टैला ! आ गई डीयर !"

हरदयाल ने सोचा यही उसकी मम्मी होगी ।

सहसा बाहर वाले कमरे में उजाला हो गया। पतले मलमल के पर्दे में से भीतर की सब वस्तुएँ दिखाई दे रही थीं । हरदयाल ने बड़ी सावधानी से खिड़की के एक ओर ओट में खड़े होकर भीतर झाँककर देखा । यह स्टैला ही थी जो अभी-अभी दर्पण के सामने खड़ी हुई बाल खोल रही थी । सिर पर बँधा रूमाल खोलकर उसने बालों को एक झटका दिया और फिर कंघी करने लगी । अभी कंघी कर ही रही थी कि दूसरे कमरे से अधेड़ आयु की एक स्त्री ने एक लिफ़ाफ़ा लाकर उसको दिया ।

"किसका है मम्मी ?" उसने लिफ़ाफ़ा खोलते हुए उससे पूछा ।

"किसी बीमार का···नर्स लाई थी······बोलती थी उसकी दशा अच्छी नहीं ।"

स्टैला चुप हो गई और लिफाफे में से पत्र निकालकर पढ़ने लगी । पूरा पत्र पढ़कर उसने उसे मुट्ठी में भींच लिया और किसी गहरे सोच में पड़ गई ।

माँ ने आश्चर्य से उसे देखा और पूछा—

"क्या है ?"

"वही···जो नर्स कह गई है···उस बीमार की दशा ठीक नहीं ।"

"मम्मी ! तुम अभी खाना मत लगाना, मैं एक बार हस्पताल हो

आऊँ।" यह कह कर वह फिर वाल बाँधने लगी।

"चली जाना···ऐसा क्या कि खाना भी समय पर न खा सको।"

"ममी ! ड्यूटी इज़ ड्यूटी···मुझे जाना ही चाहिये ।"

"किन्तु,यह ड्यूटी नहीं, पागलपन है···मेरी मानो···वैठी रहो।"

"ममी ! तुम नहीं जानतीं, वह कौन है ?"

"जानती हूँ वेटा ! तभी तो कह रही हूँ। मुझे तो तुम्हारा यह वीमार कोई आवारा-सा लगता है ।"

"कौन ?" स्टैला ने अनजान वनते हुए पूछा।

हरदयाल ने चौंक कर कान विल्कुल खिड़की के साथ लगा दिए। उसके कान हत्यारे का नाम सुनने वाले थे।

"यही प्राण···और कौन।" यह कहते हुए उसकी ममी की त्योरियाँ चढ़ आईं।

"ममी ! इसको मत भूलो···वह मेरा सव कुछ है।"

"तुम पर तो प्रेम का भूत सवार है···कहूँ तो क्या..."

"हाँ प्रेम ही सही···और प्रेम के विना संसार में है ही क्या ?"

"मैं तुम्हें स्वयं अपना जीवन-साथी चुनने के लिए वाधा नहीं डालती···किन्तु, अपनी श्रेणी का तो हो···तुम एक डाक्टर हो··· और वह क्या है···वस एक आवारा।"

"ममी···" स्टैला चिल्लाई और क्रोध से थरथराते हुए होंठों पर अधिकार पाते हुए दूसरे कमरे में चली गई।

कमरे में मौन छा गया। हरदयाल के कानों में उसकी ममी के कहे हुए शब्द गूंजने लगे···प्राण···विमार हस्पताल···आवारा उसने सोचा···अवश्य यही सुशील का हत्यारा है जो भाग कर अपनी प्रेमिका के हस्पताल में चला आया है। उसके मस्तिष्क में विचार आने लगे··· उसे ऐसा लग रहा था जैसे वह अपनी मंज़िलपर पहुँचा ही चाहता है··· उसके हाथों की उंगलियाँ उसे वंदी वनाने के लिए मचलने लगीं। उस की आँखो के सम्मुख एक वार फिर उस रात का दृश्य घूम गया जब

उसने बड़ी निर्दयता से सुशील की हत्या कर दी थी। उसके विचारों का तांता सहसा किसी के जूतों की आवाज ने तोड़ दिया। उसने दृष्टि उठा कर देखा। स्टैला फिर उसी मार्ग पर तेजी से जा रही थी।

हरदयाल ने कुछ फ़ासला छोड़कर फिर उसका पीछा किया। उसकी गति बता रही थी कि वह शीघ्र ही पहुँचना चाहती थी। उस पत्र ने उसे बेचैन कर दिया था। हस्पताल कोई दूर न था। थोड़ी देर चलते रहने के बाद वह अस्सपताल के फाटक पर पहुँच गई। कुछ देर वहाँ रुक कर उसने चोकीदार से कोई बात की और फिर चली गई।

हरदयाल के मन में एक बार तो आया कि वह भीतर चला जाये और हत्यारे को इसी समय पकड़ ले। किन्तु, फिर कुछ सोच-कर रुक गया और फाटक से थोड़ी दूर हट कर फिर स्टैला के बाहर आने की प्रतीक्षा करने लगा। जब बड़ी देर तक वह हस्पताल से बाहर न आई तो वह अपने स्थान पर पुलिस रैस्ट हाउस में लौट आया। उसका मन पूर्ण रूप से हल्का न हुआ था, किन्तु आशा की ज्योति अवश्य जगमगाने लगी थी।

अगले दिन शाम को फिर रेलवे क्लब की टैनिस कोर्ट में उच्च श्रेणी का खेल था। इन्दौर के चैम्पियनशिप-कप की होड़ थी हरदयाल और स्टैला में। स्टैला वहाँ की मानी हुई खिलाड़ी थी। अभी तक उसे कोई चैलेंज देकर हरा न सका था; किन्तु इस नवागन्तुक ने पहले खेल में ही उसके हाथ से रैकिट गिरा दिया था। इसका सब दर्शकों को अचम्भा था। आज इनके खेल को देखने के लिये और भी बहुत-से व्यक्ति आये थे।

पहले दोनों खेल समान रहे। दोनो खिलाड़ी पसीने में भीग रहे थे। तीसरा खेल आरम्भ होने से पूर्व उन्हें विश्राम के लिये थोड़ा समय मिला। अधिक परिश्रम के कारण उनके होंठ सूख रहे थे और दोनों प्यास बुझाने के लिये स्क्वैश पीने लगे।

"आप बहुत अच्छा खेलते हैं।" स्टैला ने नली मुँह के पास से हटाते हुए कहा।

"मैं···या आप ?"

"दोनों।"

दोनों खिलखिला कर हँस पड़े।

"तीसरा गेम ही वास्तविक मुकाबला है।"

"जी···आज देखते हैं इन्दौर का चैम्पियन कौन रहता है!"

"वह तो आप ही हैं···भला मुझ परदेसी की आपसे क्या होड़··· मैं तो आज यहाँ हूँ कल नहीं हूँगा···ओ· फिर आपका गेल···।"

अभी वह बात पूरी भी नहीं कह पाया था कि रेफ़री की सीटी पर दोनों को अपने-अपने स्थान पर लौट आना पड़ा। दर्शक उत्सुकतापूर्वक इस मैच का परिणाम देखने के लिए दोनों पर आँखें लगाये बैठे थे।

खेल आरम्भ हुआ। पहली सर्विस स्टैला ने की जिसे हरदयाल ने फुर्ती से लौटा दिया और फिर इधर से उधर गेंद के आने-जाने का ऐसा ताँता बँधा कि देखने वालों की आँखों की पुतलियों को साथ देना कठिन हो गया। गेंद पर रैकिट की हर चोट के बाद एक धमाका-सा होता जिसकी चोट, यों लगता, मानो दर्शकों के मस्तिष्क पर पड़ती। वह हर बार यों सांस रोक के बैठ जाते जैसे उनके मस्तिष्क की धमनियों में लहू जम गया हो और गेंद की चोट से ही बूँद-बूँद आगे बढ़ रहा हो।

यों ही बड़ी देर तक मुकाबला होता रहा। यह अनुमान लगाना कठिन था कि किसकी जीत होगी। अचानक हरदयाल को न जाने क्या विचार आया कि उसने पहले जान-बूझकर एक बाल को जाने दिया और दूसरी बार एक जोर की शॉट को रोकते-रोकते यूँ हाथ से रैकिट छोड़ दिया मानो उसका पाँव फिसल गया हो। यह अन्तिम सर्विस थी। स्टैला ने हरदयाल को जान-बूझकर रैकिट छोड़ते देख लिया था; किन्तु, इससे पहले कि वह संभलती, देखने वालों ने उस की प्रशंसा में तालियाँ पीट कर और 'वाह-वाह' करके आकाश सिर पर उठा लिया।

स्टैला की जीत हुई और लोगों ने जय-जयकार करते हुए उसे घेरे में ले लिया। कुछ व्यक्ति हरदयाल के पास जाकर उसके खेल

की प्रशंसा भी करने लगे। ऐसा समान की चोट का मुक़ाबला पहले कभी न हुआ था। स्टैला चुप थी। उसने हरदयाल को उसे जिताते हुए देख लिया था। वह आश्चर्य में थी कि उसने ऐसा क्यों किया! उसने स्वयं हार स्वीकार करके विजय श्री का मुकुट उसे क्यों पहना दिया! इसलिए कि वह स्त्री थी? ...परन्तु, नहीं...

चैंपियनशिप-कप लेकर जब वह लौटी तो सबसे पहले हरदयाल ने उसे बधाई दी।

"बधाई हो...इस वर्ष भी चैम्पियन टाइटल आपका ही रहा।"

"वास्तव में आप जीते हैं और मैं हारी हूं। वह धीरे से बोली।

"यह कैसे!" बनावट का आश्चर्य प्रकट करते हुए हरदयाल ने पूछा।

"आपने जान-बूझकर गेंद नहीं उठायी और फिर अपना रैकिट गिरा दिया।"

"नहीं तो..."

"आप मुझसे झूठ नहीं कह सकते...यह बाजी तो आपने जान-बूझकर हारी है।"

"मिस थामसन!" उसने धीरे से उसे सम्बोधित किया।

"हाँ कहिये...आपने ऐसा क्यों किया?"

"कहा न कि हम तो घुमक्कड़ ठहरे, परदेसी...आज यहाँ कल कहीं और...आपको तो यहाँ रहना है...इन्दौर का चैंपियन होना आप ही को शोभा देता है।"

दर्शकों ने फिर दोनों को घेर लिया और दोनों चुप हो गए। स्टैला की गर्दन में विजय की फूलमाला बड़ी सुन्दर लग रही थी। हरदयाल के मुख पर हार जाने का तनिक भी दुःख न था, बल्कि वह अति प्रसन्न था। स्टैला की जीत उसे और भी उसके निकट ले आई थी और इसका अर्थ था उसकी हत्यारे को पकड़ने की योजना सफल होती दीख रही थी।

लॉन में आकर सब खेल देखने वाले व्यक्ति बिखर गये। स्टैला और हरदयाल एक ओर, जहां दूसरा कोई न था, एक टेबल पर बैठ कर कोई

कोल्ड ड्रिंक पीने लगे। स्टैला इस जीत पर क़ोई प्रसन्न न थी। हरदयाल ने उसके लिए अपने नाम की कुर्बानी करके ही उसे विजयी बनाया था। दो-चार-दिन में ही वह उसके कितना निकट आ गया था।

दूसरे दिन क्लब में क्रिस्मस का विशेष उत्सव था। स्टैला ने हरदयाल को भी रात के खाने पर आमन्त्रित किया। हरदयाल ने दो-एक बार इन्कार जताकर इस निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया।

क्लब से बाहर निकल कर स्टैला रेलवे कालोनी की ओर नहीं, बल्कि हस्पताल की ओर जाने लगी।

"आप घर नहीं जा रहीं क्या ?" हरदयाल ने उसके साथ चलते हुए कहा।

"रात को एक राउण्ड लगाना होता है। सोचा, घर लौट कर अब क्या आऊंगी···आज के खेल ने वैसे भी कुछ थका दिया है।"

"ओह ! ड्यूटी···मैं समझा शायद किसी बीमार···"

"जी···!" वह कुछ चौंक गई।

"मेरा अभिप्राय था, कोई घायल या बीमार···कोई 'अपना' प्रतीक्षा कर रहा हो।"

"आपने ठीक ही समझा···एक घायल की पीड़ा ही इस समय मुझे खींच कर लिये जा रही है।"

"कोई प्रियजन···" हरदयाल ने हिचकिचाते हुए पूछा।

"क्या लेंगे पूछकर आप !"

"ओह ! सॉरी ?"

"मेरा एक फ्रैंड है।" वह चलते-चलते क्षण भर मौन रहकर स्वयं ही बोली, "घायल है बिचारा···।"

"घाव कहीं भीतर हुआ है या बाहर ?" हरदयाल ने अर्थपूर्ण प्रश्न किया।

"जी···!"

"मेरा अभिप्राय था कोई मानसिक चोट है या शारीरिक ?"

स्टैला हंस पड़ी और तिरछी दृष्टि से उसकी ओर देखते बोली "है तो वह मन का रोगी, किंतु अब की कहीं से शरीर की चोट ले आया है।"

"सिर का घाव होगा तो।" हरदयाल ने फिर अर्थपूर्ण दृष्टि से उस की ओर देखा।

"आपने कैसे जाना?" स्टैला ने उसकी आँखों में देखते हुए आश्चर्य से पूछा।

"ये प्रेमी लोग प्रायः सिर के बल ही गिरा करते हैं।" हरदयाल ने बात का रहस्य छिपाते हुए मुस्करा कर कहा।

स्टैला थोड़ी देर चुप रही और फिर बोली—

"आपका अनुमान ठीक ही है···चोट सिर पर लगी है।"

"कैसे ?" हरदयाल ने बात चालू रखते हुए पूछा।

"एक घटना में···किसी दूसरे को बचाते-बचाते अपना सिर फुड़वा लिया।"

"कैसे ?" हरदयाल ने फिर प्रश्न किया।

"प्रायः मानवीय सहानुभूति से भरपूर हृदय भी अपने लिए आपत्ति बन जाता है।"

"तो क्या मानव का हृदय पत्थर के समान कठोर होना चाहिये?"

"नहीं···मेरा यह अभिप्राय नहीं···अपने ही मन को लीजिये। आज यह आपकी मेरे प्रति सहानुभूति पर न पिघल जाता तो आप जान-बूझ कर खेल क्यों हार जाते ?"

"ओह् छोड़िये···इस बात को···आप तो घटना बता रही थीं, जिस में 'आपका घायल घायल बना।" हरदयाल ने 'आपका घायल' पर हल्का सा बल देते हुए पूछा।

स्टैला की समझ में यह बात न आई और बोली—

"हाँ, बात यह हुई कि आप रेल में यहाँ आ रहे थे कि रास्ते में किसी स्टेशन पर दो व्यक्तियों में झगड़ा हो गया। एक ने दूसरे की स्त्री को छेड़

दिया और वह वहीं गुत्थमगुत्था हो गये···प्राण से यह देख ना गया।"

"प्राण कौन ?" हरदयाल ने बात काटते हुए पूछा।

"वह मेरा मित्र···मेरा घायल मित्र।"

"फिर···?"

"आप गाड़ी से नीचे उतर आये और दोनों को छुड़ाते हुए स्वयं घाव ले आये···चोट तो कोई अधिक नहीं···किन्तु हँसी की बात यह है कि आप उनको छुड़ाने में लगे रहे और गाड़ी निकल गई।"

यह कहकर वह हँसने लगी। हरदयाल ने उसके मुख पर फैलते हुए रंगों को निहारा और उसके भोलेपन पर विचार करने लगा। ऐंग्लो इंडियन लड़कियाँ प्रायः कांइयां होती हैं, किंतु यह उन सबमें से अनोखी है। एकाएक वह चलते हुए रुक गया, स्टैला का हाथ थाम कर बोला,

"अरे···वहाँ तो गाड़ी निकल गई···आप तो स्वयं निकली जा रही हैं।"

बातों-बातों में वे हस्पताल का फाटक पीछे छोड़ आये थे।

"ओह! सारी···"कहकर वह रुक गई और कल रात का निमन्त्रण याद दिला कर वापस हस्पताल की ओर लौट गई।

हरदयाल मुस्करा कर उसे जाते हुए देखने लगा। हस्पताल में प्रवेश करने से पहले एक बार फिर स्टैला ने पीछे की ओर मुड़कर देखा। वह उसी को टकटकी लगाए देख रहा था स्टैला ने मुस्करा कर हाथ हिलाया और फिर रैकिट से खेलती हुई भीतर चली गई।

आज वह टैनिस की बाजी हार गया था, किंतु उसने और बड़ी बाजी जीत ली थी। वह प्रतिक्षण अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर था। कल रात क्लब में उत्सव होगा और हो सकता है अपराधी अपनी प्रेमिका का हाथ थामे हुए स्वयं ही वहाँ आ जाए। उसे पकड़ने के लिए वह व्याकुल हो रहा था।

छ:

वातावरण शरद था, किंतु रात रंगीन थी। सर्वत्र एक उत्सव की सी चहल-पहल थी। क्लब को एक नव-दुल्हन के समान सजाया गया था। बाहर का बाग़ और क्लब की बिल्डिंग रंग-बिरंगे फूलों से जगमगा रही थी। नाच-गाने की मधुर धुन एक जादू-सा कर रही थी।

हरदयाल भीतर हॉल में एक कोने में बिछे हुए सोफे पर बैठा आने वालों को देख रहा था। जोड़ा-जोड़ा करके कितने ही युवक और युवतियाँ सरसराते हुए बहुमूल्य वस्त्रों में, हाथ में हाथ डाले आ रहे थे।

स्टैला अभी तक नहीं आई थी। शायद वह प्राण के साथ ही आए''' हरदयाल यही सोचता हुआ उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। ज्यों-ज्यों उसे आने में देर होती जा रही थी, हरदयाल की व्याकुलता बढ़ती जा रही थी,'''यदि वह न आई तो उसकी सब आशाओं पर पानी फिर जायेगा।

उसने गले में बंधी बो को कुछ ढीला किया और उठकर हाल में टहलने लगा। इस जमघट में उसे अकेला घूमते हुए बड़ा विचित्र-सा अनुभव होने लगा और कुछ देर बाद बरामदे में आकर स्तम्भ का सहारा लेकर खड़ा हो गया और बाहर की जगमग को देखने लगा। बिजली के नन्हे-नन्हे बल्ब पेड़ों में टँगे हुए बड़े सुन्दर दीख रहे थे। वह बड़ी देर तक इन्हीं लटके सितारों को देखता रहा। सहसा किसी ने स्टैला को पुकारा। इस नाम को सुनते ही उसके शरीर में सिहरन-सी दौड़ गई। इसके साथ ही 'हैलो' की जानी-पहचानी मधुर ध्वनि सुनाई पड़ी। वह तुरन्त घूम गया। हाल के द्वार पर खड़ी स्टैला उसी को पुकार रही थी।

हरदयाल स्तम्भ के पास से हटा और धीरे-धीरे पाँव उठाता हुआ

उसकी ओर बढ़ा। वह अकेली थी और उसकी ओर देखकर मुस्करा रही थी। नुकीले और सितारों से जड़ित सफेद रेशमी वस्त्रों में वह बड़ी भली लग रही थी। हरदयाल क्षण भर तो पास आकर भौच-क्का-सा खड़ा उसे देखता ही रहा।

"आई ऐम सो सॉरी…!" स्टेला ने पहल की।

"किस लिये?"

"आने में कुछ देर हो गई…आपको अधिक प्रतीक्षा तो नहीं करनी पड़ी?"

"नहीं…मैं तो कुछ और ही सोच रहा था।"

"क्या?"

"शायद आपके 'बीमार मित्र' की दशा ठीक नहीं हुई।"

"नहीं तो…"

"उसे आपने आमन्त्रित नहीं किया होगा फिर" ?

"बुलाया तो था; किन्तु वह आ नहीं पाया।"

'क्यों…कोई विशेष बात है—?"

"नहीं बात तो कोई विशेष नहीं…उसे नाच-रंग की बातें भाती नहीं कुछ।"

"ओह! इतने रूढ़ विचार…?

"कुछ समझ लीजिए।" स्टेला ने इस विषय को समाप्त करने के विचार से कहा।

बातें करते हुए वह बिल्कुल एक-दूसरे के समीप आ गये। एका-एक हरदयाल की दृष्टि उसके गले पर पड़ी और स्तब्ध रह गया। उसके गले की शोभा सुशील का वही हार था जो अपराधी अपने साथ ले गया था। अब इसमें लेशमात्र भी सन्देह न था कि स्टेला ही अपराधी है…उसी ने हत्या की है।

आरकेस्ट्रा से नाच की धुन उठी। सब लोग उठ खड़े हुए और जोड़ा-जोड़ा मिलकर धुन की ताल पर पांव मिलाने लगे। एक हाथ

कंधे पर, दूसरा कमर पर, एक दूसरे के सामने-सामने आँखों में आँखें डाले मद तरंग में झूमने लगे। स्टैला ने मुस्कराते हुए हरदयाल की ओर हाथ बढ़ाया। हरदयाल अंग्रेज़ी नाच की ताल-सुर से भली भाँति परिचित न था, फिर भी इस समय वह इन्कार न कर सका और स्टैला का हाथ पकड़ कर पाँव मिलाता हुआ उन लोगों के बीच में जा पहुँचा। उसकी दृष्टि हार पर ही जमी हुई थी और वह मस्तिष्क में प्राण की धुंधली तस्वीर बना रहा था। यूँ तो वह नाच रहा था, उसके हाथ स्टैला की कमर और कंधे पर टिके थे, किंतु उसके हृदय में ज्वाला-सी धधक रही थी। उसकी पुतलियों में एक बेचैनी-सी झलक रही थी। जब स्टैला की मदभरी आँखों से उसकी आँखें चार होतीं तो वह काँप-सा जाता। स्टैला के होंठों पर एक मुस्कराहट फैली और लिपस्टिक के गुलाबी रंग में खो गई।

नाच समाप्त हो गया। आरकैस्ट्रा की धुन समाप्त हो गई, किंतु हरदयाल अपने विचारों में डूबा स्टैला की कमर में हाथ डाले नाचे जा रहा था। उसे होश तब आया जब हाल तालियों से गूँज उठा और वह तुरन्त स्टैला से अलग हो गया।

बैरे हाथों में ट्रे थामे हुए आये और सब ने उनमें से एक-एक मदिरा का प्याला उठा लिया। स्टैला ने भी दो प्याले उठा लिए, एक अपने लिए दूसरा हरदयाल के लिए। थोड़ी देर के लिए सभा बिखर गई और सब जोड़े अलग-अलग स्थानों पर जा बैठे। स्टैला और हरदयाल बरामदे में एक कोने में बिछे हुए बैंच पर बैठ गये और प्याले से प्याला खनका कर घूँट-घूँट पीने लगे।

रमणीक रात, हल्का-हल्का मदिरा का नशा और फिर इतना सुन्दर संग... ऐसे समय में जवान हृदय एक दूसरे को कितना समझने लगते हैं! स्टैला हरदयाल को देखे जा रही थी और हरदयाल कभी उसकी आँखों में झाँकता और कभी उसके गले में पड़े हुए हार को। हार के नीचे एक सुन्दर ब्रोच लटका हुआ था। यह एक छोटे-से हवाई जहाज़ का 'माडल' था जो उसके उभरे हुए वक्ष पर टिका हुआ

"हवाई जहाज आपको अच्छा लगता है न···?"

"क्यों नहीं···किन्तु, मैं तो इसके उतरने के स्थान पर मुग्ध हो रहा था।···वट ए लैंडिंग-ग्राउण्ड।"

स्टैला हँस पड़ी। उसे हरदयाल का यह मजाक अच्छा लगा। हरदयाल सुलझा हुआ युवक था। उसकी हर बात, हर हरकत उसके सभ्य और शिष्ट व्यवहार की प्रतीक थी। शीघ्र ही स्टैला उससे घुल-मिल गई थी···और फिर दोनों उच्च कोटि के खिलाड़ी थे, एक दूसरे के गुणों से परिचित। स्टैला ने एक घूंट प्याले में से कंठ में उतारा और रुकते हुए बोली—

"हस्पताल की एक नर्स ने उपहार में दिया है।"

"और यह हार? बहुत ही सुन्दर है।"

"क्रिसमस का उपहार···प्राण ने दिया है।"

'प्राण' का नाम होंठों पर आते ही उसकी आंखों में एक चमक सी आ गई और कपोलों में लालिमा की एक तरंग दौड़ गई। उसे प्राण से वास्तव में प्रेम है···हरदयाल ने सोचा···और यदि वह हरदयाल के उस मिलने के उद्देश्य को किसी प्रकार भांप गई तो न केवल वह उससे घृणा करने लग जाएगी, बल्कि उसके कर्तव्य-पालन के मार्ग में बाधा हो जाएगी। वह अपने प्रेमी को पुलिस के हाथों में सौंपने के लिए कभी भी तैयार न होगी।

स्थिति बड़ी क्षीण थी। उसे इस परिस्थिति में क्या करना चाहिए? एक ओर वह स्वर्ग था, जिसके कंधों पर न्याय की सुरक्षा का भार था और दूसरी ओर वह हत्यारा जो न्याय की आंखों में धूल झोंक कर छिपा बैठा था। इन दोनों के बीच में स्टैला थी···एक भोली-भाली युवती, जो इस रहस्य से अनभिज्ञ अपने प्रेम में उस अपराधी को आश्रय दे रही थी···उसकी सफलता इस बीच की झील पर ही निर्भर थी यदि वह उस के उस ओर पहुँचने में सहायक हो···।

वह कुछ देर मौन रहा।

"आपको अच्छा नहीं लगा क्या ?" स्टैला ने उसे चुप देखकर पूछा।

"क्या ? यह हार ?" वह चौंका और फिर संभलते हुए बोला, "बहुत अच्छा है ··· मैं तो प्रशंसा के लिये शब्द ही खोज रहा था।"

"मिले कोई शब्द ?"

"उँहूँ··· और सोचता हूँ, इतने सुन्दर उपहार के होते हुए मेरा यह तुच्छ···" यह कहते हुए हरदयाल ने कोट की जेब में हाथ डाला।

"आप यह भार मेरे सिर पर···इतना कष्ट···।"

"कष्ट ! नहीं मिस थामसन ! इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी··· एक खिलाड़ी के नाते से···मेरी यह आपमें भेंट तो आपको याद ही रहेगी···।" उसने स्टैला की आंखों में झांकते हुए अपना उपहार निकालकर उसके सामने रख दिया।

मे कानों के दो बुंदे थे···बिल्कुल उसी नमूने के, जिस नमूने का हार उसके गले में लटक रहा था· ऐसे लगता था मानो एक ही व्यक्ति ने उनको घड़ा हो। स्टैला विस्मय से चकित उन्हें देखे जा रही थी। कितनी विचित्र बात थी···दो व्यक्ति एक-दूसरे से बिल्कुल अपरिचित···दोनों ने उसे उपहार दिये और उन उपहारों में इतनी समानता···अपनी घबराहट पर अधिकार पाने के लिये उसने गिलास में बची हुई शराब कंठ में उँडेल ली।

हरदयाल ध्यानपूर्वक उसके मुख पर बदलते हुए रंगों को देख रहा था। उसे अचंभे में देखकर उसने पूछा—

"आपको अच्छा नहीं लगा शायद ?"

"अच्छा क्यों नहीं !" उसने हरदयाल के हाथ से बुंदे ले लिये और अपने गले में लटके हुए हार के साथ मिलाने लगी। हरदयाल ने उसकी घबराहट का अनुमान लगाते हुए कहा—

"ऐसा लगता है जैसे इन बुंदों के बिना यह हार कुछ सूना-सा था।"

"मैं भी यही सोच रही थी। अजीब बात है···आप दोनों एक-दूसरे से अपरिचित हैं, किन्तु आपके उपहारों में कितनी समानता है जैसे एक ही कलाकार ने इन्हें बनाया हो।"

"हो सकता है ऐसे ही हो।" हरदयाल के स्वर में कुछ गम्भीरता आ गई।

"कैसे ?" स्टैला कांप सी गई।

"जब से आपके गले में यह हार देखा है, मैं भी यही सोच रहा हूँ···हमारी यह अचानक भेंट, टैनिस के खेल पर···और फिर यह उपहारों में इस प्रकार का सम्बन्ध क्या परिस्थिति हमारे जीवन को कहीं कोई करवट तो नहीं दे रही।" यह कहकर हरदयाल खड़ा हो गया और बरामदे से नीचे आगया। उसके स्वर में अचानक परिवर्तन देख स्टैला कुछ डर-सी गई और उसके पीछे आते हुए बोली—

"मैं समझी नहीं !"

हरदयाल ने कोई उत्तर नहीं दिया और लॉन में आकर एक कुर्सी पर बैठ गया। हाल में आर्केस्ट्रा पर नाच की धुन फिर आरम्भ हो गई और सब लोग अपना-अपना जोड़ा लेकर नाचने लगे। हरदयाल की बात ने स्टैला के मानसिक संतुलन को बिगाड़ दिया था। वह भी उठकर उस के पास लॉन में जा बैठी।

"मिस स्टैला !" हरदयाल ने उसे संबोधन किया।

"जी !"

"मैं शायद अधिक समय तक अपनी भावनाओं को न दबा सकूँ।"

"आपको अचानक यह क्या हो गया है···कहिये तो···क्या मुझ से कोई भूल···?"

"नहीं, नहीं, ऐसा तो सोचिये भी मत···मैं तो भावना की कह रहा था···स्पोर्ट्स के नाते आपसे मेरा एक विशेष सम्बन्ध है···फिर आपसे छुपाऊँ क्यों···क्यों न मन में आई बात आपसे कह दूँ।"

"विश्वास कीजिये···मैं आपको कभी धोखा न दूँगी।

'मिस स्टैला ! मैं एक पुलिस अफसर हूँ···भोपाल रेलवे पुलिस का इंचार्ज ।"

पुलिस का नाम सुनते ही स्टैला का मुँह सफेद पड़ गया । वह डरी हुई दृष्टि से हरदयाल को देखने लगी। हरदयाल क्षण भर रुक गया और फिर बोला—

"पिछले मंगल की रात को बम्बई ऐक्सप्रेस में एक दुर्घटना हो गई।"

"क्या ?" वह चौंकते हुए बोली ।

"किसी निर्दयी ने एक अधखिली कली को मसल दिया ।"

स्टैला उसे देखती रही । हरदयाल ने थोड़ा रुक कर बात चालू रखी—

"एक युवा लड़की अकेली यात्रा कर रही थी और वह रास्ते में लूट ली गई ?"

"क्या बहुत बहुमूल्य सामान था ?"

"बहुमूल्य···अनमोल···उसका स्त्रीत्व लूट लिया गया और फिर उसकी हत्या कर दी गई ।"

हत्या का नाम सुनते ही स्टैला के मन पर चोट-सी लगी और वह सिर से पाँव तक काँप गई ।

"कौन लड़की ?" उसने काँपते हुए स्वर में पूछा ।

"वह लड़की मेरी साली थी···क्रिसमस की छुट्टियों में मेरे पास आ रही थी।"

स्टैला की धमनियों में चलता हुआ लहू थम गया और निष्प्राण-सी उसकी ओर देखती रही । कुछ रुक कर हरदयाल फिर बोला—

"और ये बूँदे उसी लड़की के हैं ।"

स्टैला ने उसी जमी हुई दृष्टि से उन बूँदों की ओर देखा और फिर एक बार सिर को झुनझुना कर काँपते हुए हाथों से उन्हें हरदयाल को लौटा दिया । हरदयाल ने देखा, उसके होंठ थरथरा रहे थे मानो

कुछ कहना चाहते हों। उसने बुंदों को एक वार हाथ में लेकर ध्यानपूर्वक देखा और बोला—

"उस लड़की के गले में एक हार भी था···इन्हीं के नमूने का। वह हार नहीं मिल सका। अनुमान लगाया जाता है कि हत्यारा उसे साथ ले गया है।"

"आप कहना क्या चाहते हैं? साफ़ कहिये न···मेरी गर्दन में लटका हार क्या वही है? आपको यही सन्देह है?"

"मिस स्टैला! घबराइये नहीं।"

"तो आपने इस समय मुझ से यह बात क्यों की? यह पुलिस की पूछ-ताछ···।"

"यह मेरा कर्त्तव्य है और उस मसली हुई कली की माँग भी।"

"क्या?"

"अपराधी को दण्ड मिलना ही चाहिए···और मैं उसी की खोज में मारा-मारा फिर रहा हूँ।"

फिर कुछ रुककर स्वयं ही कहने लगा, "ये बुंदे···यह हार··· यदि इनमें कोई सम्बन्ध है तो क्या यह सम्भव नहीं कि इस हार देने वाले उस हत्यारे में भी कोई सम्बन्ध हो?"

"आपका संकेत प्राण···"

"जी···आपका वह घायल मित्र···शायद यह जुल्म उसी के हाथों हुआ हो।"

"नहीं, नहीं···वह ऐसा कभी नहीं कर सकता।"

"हर प्रेमिका का अपने प्रेमी पर ऐसा ही भरोसा होता है।"

"मेरा मन इसे स्वीकार नहीं करता।"

"प्रायः ऐसा ही होता है···कल्पना और वास्तविकता में यही अंतर है।"

"आपको विश्वास है, इस हत्या का उत्तरदायित्व प्राण पर है।"

"जी···प्रमाण तो यही कहते हैं···यह रूमाल···यह हार···

सिर का घाव'''इन्दौर तक की यात्रा'''और आपका प्रेम'''इससे तो एक अनाड़ी भी यही परिणाम निकालेगा।" हरदयाल ने यह कहते हुए गाड़ी में से मिला हुआ रेशमी रूमाल स्टैला के सामने कर दिया।

"मिस्टर हरदयाल!" स्टैला ने रूमाल देखते हुए कहा।

"यस मिस स्टैला! आपको एक अच्छे खिलाड़ी के समान साहस से काम लेना चाहिए, और स्वयं ही इस रहस्य से पर्दा हटा दो।"

"आपका अभिप्राय है, प्राण को आपके हाथों में सौंप दूँ?"

"क़ानून और कर्त्तव्य यही कहता है।"

"कोई अपने प्रेम का स्वयं भी गला घोंट सकता है?"

"समय की आवश्यकता'''और फिर ऐसे प्रेमी का क्या भरोसा जिस का दामन पाप के काले धब्बों से अटा पड़ा हो'''जिसने झूठ और कपट की चादर ओढ़ रखी हो—जिसके स्वर में किसी अबला के लुटे हुए स्त्रीत्व की चीखें निहित हों'''आप उन हाथों में स्नेह और प्यार का सहारा ढूँढ रही हैं जिन्हें इतने बड़े व्यभिचार और पाप ने काट कर अलग ही कर दिया'''"

"बस कीजिए'''मुझ में और कुछ सुनने का साहस नहीं।"

"और मिस स्टैला! मुझ में भी और धैर्य नहीं'''बताइये, अपराधी कहाँ है?"

"आप उसे अवश्य पकड़ेंगे?"

"जी'''मेरा विचार है, आपको इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी।"

"मैं नहीं जानती थी मेरी जीत ही मेरी हार का कारण बनेगी।"

"मिस स्टैला! समय पर संभल जाने का नाम हार नहीं होता, और सच देखा जाये तो यह आपकी जीत है'''मेरी ओर देखिए'''धीरज करके चुप हूँ'''आप तो केवल उस व्यक्ति से छुटकारा पायेंगी जो आपका नहीं'''और मैं उसे खो चुका हूँ जिससे मेरा घनिष्ट संबंध था, जो मेरे इतने निकट थी।"

स्टैला में और सुनने का साहस नहीं रहा। उसने अपनी आँखें

ओर कान वन्द कर लिए। कुछ समय वाद उसने गर्दन में पड़ा हुआ हार खोला और हरदयाल को थमाते हुए वोली—

"यह लीजिये···आपकी अमानत।"

"और प्राण !" हरदयाल ने गम्भीर मुख से पूछा।

"आप जाकर उसे पकड़ सकते हैं।"

"किन्तु, विना आपकी आज्ञा के, हस्पताल से..."

"वह वहाँ नहीं है।"

"घर पर है क्या ?"

"नहीं।"

"तो कहाँ है ?"

"रेलवे यार्ड में खड़ी रेलगाड़ी में फ़र्स्ट क्लास के डिव्वे में सो रहा है।" स्टैला ने आँखें नीची किये हुए कहा।

"ऐसा किस लिए ?"

"सुवह चार वजे की गाड़ी से उसे पंजाव जाना है...और यह डिव्वा उसी गाड़ी से लगा दिया जाता है।"

यह कह कर स्टैला चुप हो गई। उसने कुर्सी पर रखी शाल उठाई और कन्धों पर डाल ली। हरदयाल उसकी ओर देखता हुआ विनम्र हो वोला—"मुझे क्षमा करना मिस स्टैला..इस शुभ दिन पर आपका मन तोड़ दिया..किन्तु. आप समझ सकती हैं कि मैं कितना विवश हूं।"

स्टैला ने कोई उत्तर न दिया। उसकी आँखें छलक आईं, दवी हुई सिसकियाँ उभर आईं और मन की वाढ़ को रोके हुए वह अनायास फाटक की ओर भागी। हरदयाल उसके पीछे-पीछे आया, किन्तु उसके पहुँचने तक वह वाहर खड़े एक ताँगे पर चढ़ कर जा चुकी थी। हरदयाल ने ताँगे वाले को वहुतेरा पुकार कर रुक जाने को कहा, किन्तु स्टैला ने सुनी-अनसुनी कर दी और वह खड़ा का खड़ा देखता रहा। उसके एक हाथ में वह हार था और दूसरे में वुंदे। वह वड़ी देर वहीं खड़ा इन दोनों वस्तुओं को देखता रहा और जव ताँगा उसकी दृष्टि से ओझल

हो गया तो वह उन्हें जेब में रखकर रेलवे यार्ड की ओर रवाना हो गया।

स्टेला का मन तोड़ने का उसे दुःख अवश्य था, किन्तु यह तो होना ही था। उसका परम कर्त्तव्य उसे विवश कर रहा था।

भीतर क्लब में आर्केस्टा की धुन फिर गूँज रही थी। बहुत-से पाँव धुन की ताल पर नाच रहे थे, किन्तु हरदयाल के कान इस धुन पर न थे। उसके मस्तिष्क में तो रेलवे यार्ड बसा हुआ था जहाँ फ़स्ट क्लास के डिब्बे में प्राण निश्चिन्त सोया होगा।

वह धीरे-धीरे अन्धेरे में रेलवे यार्ड की ओर बढ़ने लगा। दूर कोई गाड़ी दनदनाती हुई तेजी से बढ़ी आ रही थी।

सात

स्टैला अपने विस्तर पर औंधी लेटी सिसकियाँ भर रही थी। रो-रोकर वह निढाल हो चुकी थी। हरदयाल की आज की भेंट ने उसके मस्तिष्क पर कड़ी चोट लगाई थी। जब से प्राण के जीवन की यह घिनावनी और भयानक दशा उसके सामने आई थी, वह पागल हो गई थी। हरदयाल के प्रस्तुत किये प्रमाणों से सिद्ध था कि निःसंदेह वह अपराधी था···और अपराध भी कितना घोर···वह स्वयं अपनी वेवसी पर वैठी रोती रही। उसने अपनी ममी को भी कुछ नहीं वताया।

उसकी ममी ने तो कई वार कहा था कि प्राण अच्छा लड़का नहीं, किन्तु उसने उसकी वात को काट दिया था। एक वार नर्स ने भी कोई ऐसी ही वात कही थी तो वह उससे झगड़ वैठी थी। उसे प्राण के विरुद्ध कही गई कोई वात अच्छी नही लगती थी···और आज हरदयाल ने जव उसके जीवन का भेद खोला तो वह कुछ न कह सकी। और वह कह भी क्या सकती थी···पाप और प्रेम···कोई गठ जोड़ नहीं, इनका कोई सम्वन्ध नही···उसे प्राण से घृणा-सी हो रही थी। उसने किस कठोरता से उस अधखिली कली को मसला होगा···उस भयानक दृश्य की कल्पना से ही उसका मन काँपने लगा। उसने पीड़ा से आँखें वन्द कर लीं।

उसके सामने एल्वम रखी थी, जिसमें से अभी-अभी उसने प्राण की तस्वीर निकाल कर उलटी रख दी थी। वह उसकी याद तक को हृदय से निकाल देना चाहती थी। अचानक उसे विचार आया कि अव तक हरदयाल ने उसे पकड़ लिया होगा और भोपाल ले जा रहा होगा। उसकी अन्तरात्मा ने प्रश्नों के चक्कर में डाल दिया—

"क्या उसने उसे पकड़वा कर कोई पाप किया है ?"

"क्या अपने प्रेमी को धोखा देकर वह चैन से रह सकेगी ?"

"क्या उसे स्वयं प्राण से नही पूछ लेना चाहिये था ?"

"हरदयाल का तो माना यही कर्तव्य था...किन्तु, उसने उसकी सहायता करके अपने प्रेम का गला क्यों घोट दिया ?"

उसके मस्तिष्क मे नाना प्रकार के प्रश्नो का तांता बंध गया। उस का मन अति दुःखी था, आँसू बह-बहकर सूख चुके थे, और सिर पीड़ा से फटा जा रहा था। उसकी ममी उसे घर मे छोड़कर किसी पड़ौसी के यहाँ चली गई थी। वह अकेली तकिये मे मुँह छिपाये हृदय की इस ठेस पर अधिकार पाने का प्रयत्न कर रही थी। लोग क्रिसमस के डिनर के बाद क्लब से लौटे आ रहे थे।

लेटे-लेटे एकाएक उसके कानो ने किसी के पाँव की चाप सुनी। उसे यूँ लगा जैसे कोई धीरे से कमरे मे आकर खड़ा हो गया हो। उसने सोचा, ममी होगी, किन्तु आहट कुछ अनजान-सी थी और फिर ममी को चुपचाप आकर खड़ा होने की क्या आवश्यकता''' वह अचानक धड़ उठाकर घूम गई। द्वार का सहारा लिये हरदयाल खड़ा था। वह आश्चर्य चकित उसकी ओर देख ही रही थी कि वह बोला—

"शिकार हाथ से निकल गया...मेरा दुर्भाग्य।"

"कैसे?" वह उछलकर बोली।

"मेरे पहुँचने से पहले वह किसी मालगाड़ी पर जा चुका था।"

"आपसे यह किसने कहा ?"

"यार्ड के चौकीदार ने...जिसे एक रुपया देकर उसने डिब्बा खुलवाया था।"

"ओह !"

स्टैला चुप हो गई। वह सोचने लगी शायद यह अच्छा ही हो... भगवान को यह कार्य उसके हाथो होना स्वीकार नहीं था। कुछ देर बाद हरदयाल ने पूछा—

"जाने से पहले क्या उसने आपसे कुछ कहा था कि वह कहाँ

"एक काम कीजिएगा।"

"क्या ?"

"यदि आपको अपने काम में सफलता हो जाए तो यह लिफ़ाफ़ा आप को दे दीजिएगा।"

"कोई पत्र है ?"

"नहीं, उसका फ़ोटो···आज से मैंने उसे अपनी स्मृति से निकाल दिया है।"

हरदयाल ने देखा, स्टैला के गालों पर आँसू आ रुके थे। हरदयाल ने वह लिफ़ाफ़ा थाम लिया और चुपचाप कमरे से बाहर आ गया। बाहर स्टैला की ममी को आता हुआ देखकर वह क्षण-भर के लिए ठिठका, और शीघ्र लम्बे डग भरता हुआ अँधेरे में लुप्त हो गया।

वहाँ से वह सीधा स्टेशन आया और भोपाल को जाने वाली गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगा। आज की असफलता से उसे बड़ा खेद हुआ था···उसकी सब आशाओं पर पानी फिर गया था। वह सोचने लगा, उसने स्वयं ही तो भाग जाने का अवसर दिया है। वह चाहता तो उसे पहले ही हस्पताल में आकर पकड़ सकता था। एकाएक किसी विचार से वह चौंक पड़ा। उसके पास तो उसका फ़ोटो है··· भावना प्रवाह में भूल ही गया था कि इस रहस्य की कुंजी तो स्वयं स्टैला ने उसे थमा दी थी। उसने झट जेब से स्टैला का दिया हुआ लिफ़ाफ़ा निकाला और लैम्प के खम्बे के नीचे खड़ा होकर अपराधी की तस्वीर को देखने लगा।

तस्वीर को ध्यान से देखते ही उसके मस्तिष्क पर एक अँधेरा-सा छाने लगा। उसके हृदय की धड़कन तेज़ हो गई। टाँगें क्षण-भर के लिए लड़खड़ा-सी गईं। पाँव तले की धरती खिसकती हुई दिखाई देने लगी। उसे विश्वास न आ रहा था कि यही तस्वीर उस अपराधी की है···कहीं बहुत बड़ी भूल तो नहीं हो गई···कठिनता से अपने आपको संभालते हुए वह पास पड़े बैंच पर बेसुध-सा बैठ गया।

तस्वीर अभी तक उसके हाथ में थी। यह तस्वीर प्राण की न थी, वलिक उसके अपने भाई प्रभुदयाल की थी।···प्रभुदयाल, उसका छोटा भा:, जो कि वर्षों से लापता था। स्कूल के दिनों में ही वह आवारा और चरित्रहीन था और एक दिन उसी के हाथों से पिटकर वह घर से भाग निकला था।

भाग जाने पर भी उसकी सूचनायें घर वालों को मिलती रही थीं। दो-एक वार चोरी के दंड में उसे जेल भी जाना पड़ा था। फिर वह वदमाशों की टोली में मिल गया। हरदयाल ने जव उसके यह चलन देखे तो पिता से कहकर उसे सम्पत्ति से वेदखल करवा दिया। इसके साथ-साथ उसने दैनिक पत्रों में यह घोषणा करवा दी कि वे लोग उस की किसी हरकत के उत्तरदायी न होंगे। आज वारह वर्ष से वह घर नहीं आया था।

आज विधि ने किस परिस्थिति में दोनों को पुन: मिला दिया था। दोनों विभिन्न दिशाओं से आकर जीवन के ऐसे दोराहे पर मिले थे जहाँ प्रसन्नता न थी, वलिक दु:ख था, घृणा थी, शत्रुता थी। हरदयाल ने एक वार असावधानी से फिर उस तस्वीर को देखा और लिफ़ाफ़े में वन्द करके जेव में रख लिया। इस तस्वीर ने अपने कर्त्तव्य के प्रति उसके निश्चय को और दृढ़ कर दिया। उसकी धमनियों में लहू खौलने लगा।

"पंजाव गया है···दूर किसी पहाड़ी गाँव में कुछ दिन आराम करने···' स्टैला के ये शब्द उसके मस्तिष्क में घूमने लगे। आशा का दीपक फिर टिमटिमा उठा···हो सकता है, वह माता-पिता का सहारा लेकर अपने आपको पहाड़ों में छिपाने के लिए चला गया हो···उसें अवश्य सूचना मिल चुकी होगी कि पुलिस उसकी खोज में है।

हरदयाल के माता-पिता शहरों की हलचल से दूर काँगड़ा के एक छोटे-से गाँव में रहते थे जहाँ उनकी अपनी जमींदारी थी। हरदयाल ने कई वार चाहा कि अपने माता-पिता और छोटी वहन शांति को अपने पास रखे, किंतु उसके पिता गाँव छोड़कर वाहर न जाना चाहते थे।

उन्हीं के इस हठ के कारण वह घातिको भी अपने साथ न रख सकता था।

वह बहुत दिनों से गाँव न गया था। अब इतने समय बाद यदि वह अपने छोटे भाई को पकड़ने के लिए गाँव गया तो माता-पिता के मन पर क्या बीतेगी ? वह बुरा सही, घर से निकाला हुआ सही, किंतु ममत्व फिर ममत्व है···उसकी बेबसी पर तरस खाकर माता-पिता अवश्य उसे गले लगा लेंगे···ऐसी परिस्थिति में वह उसे उनसे क्योंकर छीनकर कानून के सामने लायेगा ?

उसने सोचा,वह अपने स्थान पर किसी और अफ़सर को भेज दे तो अच्छा हो। किंतु उसे अपना यह सुझाव जचा नहीं···हो सकता है वह वहाँ गया ही न हो···फिर अपने ही घर मे पूछ-ताछ के लिए किसी दूसरे व्यक्ति को भेजने से उसके घर की बदनामी ही तो थी···। इन बातों को सोचते हुए उसने यही निर्णय किया कि उसे स्वयं ही वहाँ जाना चाहिए··· यह कार्य उसके हाथों ही होना चाहिए। चाहे उसे कितना ही अपने मन पर पत्थर रखना पड़े···वैसे तो अच्छा होता कि वह इन्दौर मे ही उसके हाथ लग जाता···माता-पिता को तो सूचना न होती और बुढ़ापे में अपनी आँखों वे अपने बेटे की मृत्यु न देखते, किन्तु अब उपाय ही क्या था ?

इन्दौर से वह सीधा पंजाब नहीं गया बल्कि भोपाल में रुक गया। उसने सोचा, कहीं ऐसा न हो कि वह अपने गाँव में पहले पहुँच जाए और प्रभुदयाल उसके बाद पहुँचे। ऐसी दशा मे उसके फिर भाग जाने की आशंका थी। यह विचार कर उसने यही उचित समझा कि दो दिन रुक कर वहाँ जायें। इसी बीच मे उसने हत्यारे के पहले बिना नाम के वारंट बदलवा कर प्रभु के नाम का वारंट बनवा लिया।

इन्दौर आने के चार दिन बाद हरदयाल अपने गाँव सोनापट्टी में पहुँचा। चम्बा की पहाड़ियों की गोद मे, यह एक छोटा-सा रेलवे स्टेशन था, जहाँ छोटी गाड़ी केवल सप्ताह मे दो बार पहुँचती थी। हरदयाल वर्ष मे एक बार अवकाश लेकर यहाँ आराम करने के लिए आता था। और इस सुन्दर शान्त वातावरण मे कुछ दिनों के लिए

दफ़्तर की सारी चख-चख विसरा देता था।

आज जव वह छोटी गाड़ी से उतरा तो उसे वहाँ कोई अनोखा-पन दिखाई न दिया। वही पहाड़ियों से घिरा हुआ पुराना स्टेशन। इस घाटी में शहरों की वनावटी सभ्यता का कोई चिन्ह न था। संसार की हवायें मानो इन पहाड़ों से टकराकर लौट जाती हों। इस घाटी में उनका कोई टिकाव न था।

उसका आज अपने गांव में आना पहले से कुछ विभिन्न था। इस खुले वातावरण में साँस लेने से उसे आराम न मिल रहा था वल्कि उसके फेफड़ों में पीड़ा-सी उठ रही थी। उसे तनिक भी मानसिक शान्ति न मिली वल्कि यूँ अनुभव हुआ कि उसका मन पहले से और भारी हो गया है।

गाँव में अपने आने को वह किसी पर प्रकट न होना देना चाहता था इसलिए वह फाटक से वाहर न आया, वल्कि चुपचाप पिछली ओर से उतर कर कुछ दूर रेल की पटरी के साथ चल कर उस पग-डण्डी पर हो लिया जो सीधी गांव को जाती थी। आगे चलकर वह पगडण्डी तलहटी में उसके घर की ओर मुड़ जाती थी।

घर की प्राचीर के पास पहुँचकर उसका हृदय ज़ोर-ज़ोर से धड़-कने लगा। माथे पर पसीना आ गया और नसें किसी वोझ से खिच सी गईं। उसने सिर उठाकर अपने घर की मुंडेर को देखा जो गाँव के सव घरों से ऊँची थी। यह उसके घराने के शेष गाँव वालों से वड़ा होने का प्रमाण था। उसका परिवार धन और मन में सवसे ऊँचा था।

जिस घर में वह वेधड़क चला आता था, आज वहीं आते हुए उस के पाँव लड़खड़ा रहे थे। उसे संकोच हो रहा था। यदि घर में प्रवेश करते ही उसका सामना प्रभु से हो गया तो···वह क्या करेगा! उसने एक वार फिर घर की मुंडेर को देखा, पतलून की जेव में पड़े हुए पिस्तौल को देखा और भीतर चला गया।

आँगन का किवाड़ खुलते ही उसकी भेंट शांति से हुई। वह एकाएक चिल्लाई, "भैया" और प्रसन्नता से भाई के गले से लिपट

गई। हरदयाल ने देखा कि शान्ति की प्रसन्नता में तनिक-सा भय भी छिपा हुआ है। उसने उसे प्यार किया और बोला—

"मैं समझा तुम शायद मुझे पहचान न सकोगी।"

"क्यों, कोई बहन अपने भैया को भी नहीं पहचानती?"

"अचानक जो चला आया।"

"पहले ही आप सूचना देकर कब आते हैं?"

"पुलिस वाले जो ठहरे···अचानक चले आने की मुझे आदत सी पड़ गई है।"

हरदयाल ने अनुभव किया, पुलिस के नाम से शांति का मुख क्षण भर के लिए पीला पड़ गया था। किंतु शीघ्र ही वह संभली और माँ को सूचना देने भीतर भाग गई।

माँ और बाबूजी को बेटे से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। गले मिलन के बाद बाबूजी ने उससे सुशील की अकस्मात् मृत्यु पर शोक प्रकट किया। सुशील के पिता ने बेटी की मृत्यु का कारण उन्हें गलत बताया था। हरदयाल ने भी उन पर वास्तविकता प्रकट न होने दी···उसकी सफलता इसी में थी कि उन्हें उसके वहाँ आने का उद्देश्य न ज्ञात होने पाये। उसने अटैची रखने के लिए शांति के हाथों में दे दी और बोला—

"कानपुर से लौट रहा था···सोचा आपसे मिलता चलूँ।"

"बड़ा अच्छा किया तुमने बेटा। जी तुमसे मिलने के लिए बहुत कर रहा था।" माँ ने कहा।

उन सबके चेहरों में छिपी हुई घबराहट हरदयाल से ओझल न रह सकी। उसी समय माँ ने शान्ति से कोई संकेत किया और बाहर जाने के लिए मुड़ी। हरदयाल ने छिपी दृष्टि से उसे देखा और लपककर चोटी से पकड़ कर खींच लिया। शान्ति 'ऊँ' करके वहीं रुक गई।

"डर गई!"

"हाँ, भैया! तुम पुलिसवाले जो हुए, तुमसे डर लगना ही चाहिए।"

"हट! पगली···नटखट," हरदयाल ने उसे छेड़ा और पूछा, "कहाँ

जा रही हो इस समय ?"

"हलवाई के यहाँ···दही लेने।"

"क्यों ? अपनी गाय को क्या हुआ ?"

"है···किन्तु घर के दही में बिल्ली मुँह मार गई है।"

"ओह ! तो ठहर के ले आना !"

"नहीं···समाप्त हो जायेगा भैया !"

"अच्छा, जा।"

हरदयाल ने दृष्टि घुमाकर वावूजी और माँ की ओर देखा। उन के मुख पर गम्भीरता-सी झलक रही थी। दृष्टि मिलते ही मुस्करा दिए, जैसे शान्ति के चले जाने से उनकी घवराहट दूर हो गई हो।

"विना किसी पर प्रकट किए हरदयाल उनकी हरकतों का ध्यान पूर्वक निरीक्षण कर रहा था'। उसने अनुभव किया कि उसके आज यों अचानक चले आने पर घर वाले इतने प्रसन्न न थे जितने वे साधारणतः हुआ करते थे। संकेत द्वारा माँ का शान्ति को तुरन्त उसके आते ही वाहर भेज देना, उनकी अकारण घवराहट और कई ऐसी वातें, जिनसे भय-सा झलकता था···उसके सन्देह की पुष्टिकर रही थीं। उसका अपराधी यहीं है···इस घर में···किन्तु; वह कहाँ है ? वह माँ से कैसे पूछे ?···कोट लटकाने के वहाने उसने भीतर वाले कमरे को भी देख लिया था। वह वहाँ भी न था।

एकाएक आँगन में अलगनी पर लटके हुए कपड़ों को देखकर वह ठिठक गया। फिर झट माँ को अपनी ओर आकर्पित देखकर उसने दृष्टि झुका ली और कुर्सी पर वैठकर अपने वूट खोलने लगा। माँ को स्नान के लिए पानी रखने के लिए कहकर उसने जेव से पिस्तौल निकालकर वावूजी को दी और वोला—

"वावूजी ! इसे संभाल कर अपनी अलमारी में रख दीजिए।"

वावूजी भीतर गये तो उसने फिर दृष्टि घुमाकर उन कपड़ों को

देखा जो सूखने के लिये बाहर अलगनी पर टँगे थे। माँ और शान्ति के कपड़ों के साथ एक चैक-कमीज और जीन का पतलून भी लटक रही थी। घर में बाबूजी के सिवा और कोई पुरुष नहीं था और वे भी केवल पायजामा और बन्द गले की कमीज पहने हैं···फिर यह नये फैशन की कमीज और यह जीन की पतलून किसकी हो सकती है? किसकी इस का एक ही उत्तर था···प्रभुदयाल···वह अवश्य इसी गाँव में है और माँ और बाबूजी उससे यह बात छिपाना चाहते हैं। वह चुपचाप बैठा धीरे-धीरे जूते और जुराबें उतारता रहा।

माँ ने स्नान का पानी रखने के बाद उसे नहा लेने को कहा और हरदयाल हाथों में जूते उठाये हुये स्नान घर में चला गया। स्नान घर की धुंधली खिड़की में से उसने देखा, माँ उसके जाते ही अलगनी से वह कपड़े उतार रही थी। इतने में शान्ति बाहर से एक मिट्टी का सकोरा थामे हुये भीतर आई और इधर-उधर देखकर माँ के कान में कुछ कह कर भीतर चली गई।

हरदयाल द्वार बन्द करके नहाने लगा। उसके मस्तिष्क में एक ही विचार बार-बार उठ रहा था···यदि घर वालों को और प्रभु को इस बात की भनक पड़ गई कि वह किस उद्देश्य से यहाँ आया है तो उसकी सफलता असफलता में परिवर्तित हो जायेगी···और यदि अबकि वह भाग गया तो उसका हाथ आना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव हो जायेगा।

जब वह नहाकर निकला तो बाबूजी कहीं बाहर जा चुके थे। हरदयाल ने माँ से पूछा—

"बाबूजी कहाँ गये माँ?"

"पाण्डेजी ने किसी कार्यवश बुला भेजा था, वहीं गये हैं।"

"फिर चले जाते···अभी तो मैं आया था···।"

"यही कहते थे शीघ्र उससे निबटकर लौट आऊँगा और फिर जी भर के बेटे के पास बैठूँगा।"

हरदयाल ने माँ की बात में छिपी हुई बनावट को ताड़ लिया,

पहुँचते ही पिताजी ने उसे घर से ले जाकर कहीं और छिपा दिया हो जहाँ से वाद में वह सुगमता से भाग सकता हो···शायद इसी कारण से वह वाहर गए हों···पाण्डे जी से मिलने···यदि वह भाग गया इस विचार ने क्षण भर के लिए हरदयाल के मस्तिष्क में खलवली मचा दी। फिर उसे विचार आया कि आज मंगल का दिन था। वहाँ गाड़ी केवल सप्ताह में दो वार आती-जाती थी। आज की आई हुई गाड़ी शुक्र के दिन लौटेगी···वस वहाँ नहीं आती थी। सो इससे पहले प्रभु के वहाँ से वाहर जाने का कोई साधन न था। वह यही सोच रहा था कि वावूजी नहा कर स्नान-गृह से वाहर निकले।

"वावूजी! गाड़ी कव जायेगी?" उसने अपने मन को सांत्वना देने के लिए पूछा।

"शुक्र के दिन।"

"इससे पहले!"

"नहीं···क्यों?"

"कुछ नहीं···जाने का प्रोग्राम वना रहा था।"

"अभी? आज ही तो आये हो···और अभी से वापसी का प्रोग्राम आरम्भ कर दिया है।"

"सोमवार को ड्यूटी पर जाना है।"

"वहुत दिन हैं अभी···शुक्र को चलकर वड़ी सुगमता से इतवार तक भोपाल पहुँच जाओगे।"

"सोचता था, एक दिन पहले चला जाता तो अच्छा था।"

"क्यों।"

"दिल्ली में एक दिन रुक कर मामाजी से मिलता जाता।"

"उनसे फिर कभी मिल लेना इतने दिनों के वाद तो आये हो।" माँ ने थालियों में खाना परोसते हुए कहा।

वाप-वेटा दोनों चौके में ही खाना खाने के लिए आ गए। हरदयाल ने वातों-वातों में माँ-वाप पर यह प्रगट कर दिया था कि वह शीघ्र लौट

जाना चाहता है। उसका यहाँ आना आकस्मिक ही था। यह सावधानी उसने इसलिए बरती कि कहीं वह उसके आने पर कोई शंका न करें।

वे खाना खा ही रहे थे कि शान्ति लौट आई। माँ और बाबूजी ने मौन दृष्टि से उसे देखा। शांति ने आँख बचा कर हाथ में पकड़ी हुई कोई वस्तु कोने में रख दी। हरदयाल ने तीखी दृष्टि से देखा। कपड़े में लिपटा हुआ बर्तन था।

वातावरण कुछ गम्भीर-सा हो गया था। हरदयाल ने मुस्कराते हुए शान्ति से कहा—

"आओ शान्ति! आज भैया के साथ खाना न खाओगी?"

शान्ति भाई के पास आ बैठी और सब मिलकर खाना खाने लगे। खा चुकने के बाद इधर-उधर की बातें होती रहीं...कुछ घर की, कुछ दुनियाँ की और जब शान्ति सो गई तो उसके ब्याह की···किन्तु, इस बीच में एक बार भी प्रभु का नाम नहीं आया। हरदयाल आश्चर्य में था कि आज उन्होंने उस चाण्डाल को क्यों याद नहीं किया जबकि पहले बातचीत में वह उसे सदा कोस कर याद करते थे।

ये बातें उसके विश्वास को दृढ़ करती जा रहीं थीं। वह ऐसे अवसर की खोज में था जिससे उसे किसी प्रकार उसका ठिकाना पता लग जाए। शान्ति का मन्दिर के बहाने बाहर जाना, कपड़े में लपेटा हुआ बर्तन···हो न हो वह भाई के लिए खाना लेकर गई थी। उसने प्रभु के धुले हुए कपड़े भी दोबारा नहीं देखे थे। माँ की अनुपस्थिति में उसने घर में इधर-उधर उन्हें ढूंढने का प्रयत्न भी किया, किन्तु उसे निराश होना पड़ा। उसका मन कह रहा था कि प्रभु गाँव में ही छिपा है और यह भेद घर के सब व्यक्ति जानते हैं···किन्तु, वे उस से यह छिपा रहे हैं।

घर के सभी लोग सो चुके थे। बाबूजी के कमरे से खुर्राटों की आवाज सुनाई दे रही थी। माँ और शान्ति भी नींद में मग्न थीं, किन्तु हरदयाल की आँखों में नींद न थी। न जाने क्या सोचकर हरदयाल बिस्तर से उठा और दबे पाँव कमरे से बाहर निकल आया।

बरामदे में आकर उसने एक बार फिर घूमकर पीछे देखा। सर्वत्र मौन और अन्धकार का राज्य था। उसने धीरे से बाहर का किवाड़ खोला और घर से बाहर आ गया। वह अपने व्याकुल मन को शान्ति देने के लिए अकारण ही गांव में इधर-उधर घूमने लगा।

वह सोचने लगा "प्रभु खेतों में तो कहीं हो नहीं सकता, इस लिए कि उनके खेत घर से दूर थे और रात के समय शान्ति का वहाँ अकेले जाना किसी प्रकार भी संभव नहीं। आस-पास भी कोई ऐसा स्थान नहीं जहाँ वह छिपाया जा सके···कोई ऐसा सम्बन्धी और मित्र भी उसकी दृष्टि में नहीं था जो उसकी सुरक्षा का भार अपने सिर लेता।

अचानक एक विचार ने उसे चौंका दिया···तबेला···क्या वह कहीं तबेले में ही तो नहीं छिपा बैठा ? यह स्थान घर के निकट भी है, वहाँ घर वालों को छोड़कर कोई और आता-जाता भी नहीं···सबसे बड़ी बात यह कि यह स्थान साधारण मार्ग से हट कर है।

यह विचार आते ही हरदयाल सीधा तबेले की ओर चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर वह क्षण-भर के लिए रुक गया। किवाड़ बाहर से बन्द था, किन्तु ताला नहीं लगा था। उसने पहले तो सोचा कि किवाड़ खोलकर भीतर चला जाये, किन्तु फिर किसी विचार से रुक गया और तबेले की कुछ ईंटें उखड़ी हुई थीं जहाँ से फलांग कर भीतर पहुँचा जा सकता था। हरदयाल ने धीरे से टूटी दीवार पर पाँव रखा और दूसरे ही क्षण वह तबेले में था।

तबेले में आकर वह एक ओर छिपकर खड़ा हो गया और ध्यान-पूर्वक भीतर देखने लगा। यहाँ एक ओर दो घोड़े और दूसरी ओर एक गाय बंधी थी। भीतर सर्वत्र मौन था। केवल कभी-कभी किसी झींगुर की ध्वनि सुनाई दे जाती थी। हरदयाल कान लगाकर किसी और ध्वनि को सुनने का प्रयत्न करता रहा, किन्तु उसे और कोई आवाज़ न सुनाई दी। थोड़ी देर बाद उसने दीवार में से एक ईंट निकाली और उसे पूरे बल से फ़र्श पर फेंका। धमाका हुआ और घोड़े

एकाएक उछल कर हिनहिनाने लगे···फिर मौन छा गया। उसका अनुमान था कि घोड़ों की हिनहिनाहट से शायद भीतर छिपा हुआ व्यक्ति कुछ हलचल उत्पन्न करके अपने यहाँ होने का प्रमाण देगा। किन्तु उसे निराशा हुई। प्रभु वहाँ न था। वह अपना-सा मुँह लेकर घर लौट गया। घर पहुँचकर वह बड़ी देर तक अपने बिस्तर पर पड़ा रहा। धुँधले-धुँधले विचारों ने मस्तिष्क को घेर रखा था। कहीं आधी रात के बाद करवटें बदलते रहने के बाद उसे नींद आई।

वह कुछेक घन्टे ही सोया होगा कि आहट से उसकी आँख खुल गई। उसने धड़ उठाकर देखा। बाहर अंधेरा था। उसकी दृष्टि बरामदे में से होती हुई रसोईघर में जा लगी जहाँ हल्की-सी दिये की रोशनी हो रही थी। हरदयाल आँखें फाड़कर उस ओर देखने लगा।

शान्ति और माँ दोनों जाग रही थीं। माँ रोटी बना रही थीं और शान्ति उसके हाथ से रोटी ले-लेकर एक कपड़े में लपेटती जाती थी। इतनी सवेरे खाना बनाने की क्या आवश्यकता थी? हरदयाल चौंककर देखने लगा। शान्ति ने रोटी वाला कपड़ा उठाया और माँ से कुछ कहकर बाहर निकल गई। उसके हाथ में एक छोटी-सी गठरी कपड़ों की भी थी। हो न हो, यह खाना और कपड़े प्रभु के लिए ही हैं। हरदयाल ने सोचा, यह खाना सवेरे मुँह अंधेरे और साँझ को सूर्य ढले ही भेजा जाता है कि कोई देख न ले।

हरदयाल बिस्तर से उठा, किन्तु माँ को रसोईघर से उठकर बाहर द्वार तक जाते देखकर फिर लेट गया। वह शायद शान्ति से कुछ कहने के लिए द्वार तक आई थी।

शान्ति को विदा करके माँ दिया उठाकर स्टोर में चक्की पीसने के लिए चली गई। ज्यों ही वह आँखों से ओझल हुई, हरदयाल उठा और चप्पल पहनकर चुपके से बाहर निकल गया। धुंधले अंधेरे को चीरते हुए उसने देखा, दूर गली में शान्ति अकेली बढ़ती जा रही थी। हरदयाल ने शीघ्र पग उठाये और थोड़ा फ़ासला रखकर उसका पीछा करने लगा।

चलते-चलते शान्ति पनवाड़ी की दुकान पर रुक गई और कुछ लेकर फिर आगे वढ़ गई। आगे रास्ता ढलवाँ था। जव वह आँखों से ओझल हो गई तो हरदयाल उस दुकान पर पहुँचा और जेव से रुपये का नोट निकालते हुए वोला—

"गोल्ड फ्लैक का एक पैकिट।"

"कव आये वावूजी ?" पनवाड़ी ने उसे पहचानते हुए कहा।

"ओह! रामदयाल···अच्छे तो हो!"

"हाँ, वावूजी! सोच रहा था दो दिन से आए हो, मिले नहीं ···घर से नहीं निकले ?"

"तुम्हें किसने वताया भई ?"

"आपकी छोटी वहन शान्ति ने···और हाँ, अभी-अभी तो वह आपके लिए सिग्रेट लेकर गई है।"

"अच्छा! कौन-सा व्राण्ड ले गई है ?"

"लक्की स्ट्राईक।"

'लक्की स्ट्राईक' का नाम सुनते ही हरदयाल का माथा ठनका। यही सिग्रेट उसने सुशील के डिव्वे से उठाया था और यही व्रांड अपराधी ने वीना स्टेशन पर पान वाले से माँगा था। हत्या की सव कड़ियाँ मिलती जा रही थीं।

"अच्छा, यह भी रहने दो।" उसने एक सिग्रेट सुलगाया और पैकिट जेव में रखकर आगे वढ़ गया।

चलते-चलते उसने एक सिग्रेट सुलगा लिया और ज़ोर से एकदम खींचा। सहसा उसे यों अनुभव हुआ मानो गाड़ी की गड़गड़ाहट में उसे कई चीखें सुनाई दे रही हों और एक के वाद एक 'लक्की स्ट्राईक' के वुझे हुए टुकड़े फ़र्श पर गिर रहे हों···और वह चीखें धीरे-धीरे समाप्त हो गई हों और उनका स्थान एक भयानक ठहाके ने ले लिया। वह झुंझला उठा और एकाएक शान्ति का विचार आते ही उसने अपनी चाल तेज़ कर ली।

आगे जाकर शान्ति तबेले की ओर मुड़ गई। हरदयाल को अचंभा हुआ। रात वहीं से वह असफल लौट गया था। तबेले के फाटक के पास पहुँचकर वह क्षण-भर के लिए रुक गई और मुड़कर पीछे देखने लगी हरदयाल ओट में था सो उसे दिखाई न दिया। शान्ति किवाड़ एक ओर धकेलकर भीतर चली गई और उन्हें फिर से बन्द कर दिया। अंधेरा अब छट चुका था और सब कुछ स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

हरदयाल दीवार के साथ-साथ बढ़ता हुआ उसी स्थान पर पहुँच गया जहाँ से रात फलांग कर वह भीतर आया था। वहीं ओट में खड़े होकर उसने तबेले में झांका। शान्ति भीतर आकर इधर-उधर देखकर तबेले की पिछली कोठरी में घुस गई। रात को यह हरदयाल के ध्यान में निकल गई थी। वह क्षण-भर उधर देखता रहा और फिर उन्हीं पाँव घर वापस लौट आया। उसने प्रभु के छिपने का स्थान पा लिया था, अब अन्तिम कदम उसे बहुत सोच-समझकर उठाना चाहिये था।

शान्ति घर पहुँची तो हरदयाल आँगन में खाट पर बैठा दातुन कर रहा था। दोनों की आँखें चार हुईं। एक दृष्टि में प्रश्न था और दूसरे की दृष्टि में झेंप-सी। भैया को देखकर वह ठिठक गई और होंठों पर बल-पूर्वक मुस्कान लाते हुए बोली—

"नमस्ते ! भय्या !"

"नमस्ते···कहाँ गई थी शान्ति ?" उसने दातुन करते हुए पूछा।

शान्ति इस प्रश्न पर कुछ घबरा गई और फिर शीघ्र ही सँभलते हुए बोली—

"मन्दिर।"

"यह सुबह-शाम मन्दिर में क्या होता है ?"

शान्ति को इस प्रश्न की आशा न थी। वह सोच ही रही थी क्या उत्तर दे कि माँ बाहर आ गई। हरदयाल ने उसकी घबराहट का भास करते हुए मुस्कराकर कहा—

"मेरा अभिप्राय था···बड़ी पुजारिन बन गई हो।"

"बनी नहीं···बनने का अभ्यास कर रही है।" माँ बीच में बोली। शान्ति ने माँ को आते देखा तो भीतर चली गई और किवाड़ पीछे खड़ी होकर उनकी बातें सुनने लगी।

"हरदयाल ! यदि तुम्हें अच्छा नहीं लगता तो बन्द कर दूँ।" माँ ने कहा।

"क्या ?" हरदयाल ने पूछा।

"यही शान्ति का मन्दिर आना-जाना।"

"यह मैंने कब कहा है ? मैं तो यों ही कह रहा था।"

माँ की खिंची हुई नसें ढीली पड़ गईं। शान्ति ने भी आराम की साँस ली और कमरे की बिखरी चीज़ें सँभालने लगी। दूसरे कमरे में बाबूजी पूजा कर रहे थे। शान्ति को पास देखकर धीरे से पूछने लगे—

"कुछ कहता था ?"

"यह पर्चा दिया है।"

बाबूजी ने शान्ति के हाथ में से पत्र ले लिया और पूजा की पोथी के नीचे रख दिया। शान्ति फिर कहने लगी—

"पूछता था, भय्या और कितने दिन रहेंगे ?"

"तुमने क्या कहा ?"

"दो-चार दिन तक चला जायेगा।"

बाबूजी ने कोई उत्तर न दिया। शान्ति बाहर चली गई और वह फिर पूजा में लग गये। उसकी आँखें तो पूजा की पुस्तक में थीं, किन्तु मस्तिष्क कहीं और उलझा हुआ था। उसके मन में बार-बार यही बात आ रही थी कि वह किस प्रकार हरदयाल से प्रभु की बात करें। वह उससे घृणा भी करता था और पुलिस अफ़सर भी था।

उन्होंने पूजा की पोथी बन्द कर दी और प्रभु का भेजा हुआ पर्चा पढ़ने लगे। उसने उनसे प्रार्थना की थी कि भय्या से कहकर उसे फिर से परिवार में स्थान दिया जाये। वह इस भटकते रहने वाले जीवन से ऊब चुका है।

उसी दोपहर को जब हरदयाल पाण्डेजी के यहां से खाना खाकर लौटा तो शान्ति कमरे में बैठी रेशम के धागों की डोरी बना रही थी। हरदयाल चुपके से भीतर आया और उसके पीछे खड़ा हो गया। शान्ति को उसके आने का पता भी न चला। यह डोरी तो ऐसी थी जो वह राखी के लिए बनाया करती थी···हरदयाल को अचंभा हुआ। उसने जान-बूझकर धीरे से पाँव की आहट की। शान्ति ने घूमकर देखा और अनायास उसके हाथ काँपने लगे। उसने रेशम के धागे अपनी उँगली के गिर्द लपेटने आरम्भ कर दिये। हरदयाल ने उसकी कंपकंपाहट को जाँचते हुए पूछा—

"राखी बना रही हो क्या ?"

"जी !"

"अभी से ! रक्षाबंधन को तो छः महीने होंगे।"

"किन्तु मेरे भय्या तो आज मेरे पास आये हैं।"

"सो तो है···किन्तु क्या राखी के दिन नहीं भेजोगी ?"

"डाक द्वारा लिफाफे में तो सदा भेजती हूँ; किन्तु स्वयं अपने हाथों से बाँधने का शुभवसर कभी ही प्राप्त होता है।"

हरदयाल ने बात टाल दी और हँसते हुए भीतर चला गया। वह सोचने लगा, क्या शान्ति यह डोरी प्रभु के लिए तो नहीं बना रही···वरन् छः महीने पूर्व ही राखी बाँधने का क्या अर्थ ? उसे शान्ति की इस बात में सन्देह-सा दीखने लगा···प्रभु घर वालों के मन को मोह कर अपने पापों पर पर्दा डालना चाहता था, जिससे वह हत्यारे की सुरक्षा दे सके। वह अपने आपको निर्दोष प्रमाणित करने के लिए कोई भी चाल चल सकता था।

उसने पहले तो सोचा कि पिताजी से साफ कह दे कि प्रभु एक भयानक हत्या करके उनके पास आया है और उसी की खोज में वह स्वयं भी इन्दौर से यहाँ पहुँचा है; किन्तु फिर कुछ सोचकर चुप हो गया···हो सकता है बेटे का प्यार, स्नेह, भावुकता उन्हें कोई ऐसा

पग उठाने पर विवश कर दे कि भाई के साथ-साथ पिता भी उसके मार्ग की वाधा वन जाये···कहीं ऐसा न हो कि इस कर्त्तव्य और भावना की खींचातानी में वह अपने कर्त्तव्य से भटक जाये ।

किन्तु वह वात जो वह स्वयं उनसे न कह सका, उस रात जव मां-वेटी दोनों सो गईं तो वावूजी चुपचाप उसके कमरे में आ गये । हरदयाल ने भांप लिया कि वे कोई विशेष वात कहने आए हैं । फिर भी उसने आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा—

"वावूजी !"

वह चुप रहे और उसकी चारपाई पर टाँगें ऊपर करके वैठ गये हरदयाल ने अपना कम्वल उनके घुटनों पर ओढ़ाते हुए पूछा—

"ठण्ड थी वावूजी । मुझे वुलवा लेते ।"

"एक वात है वेटा !"

"हाँ, कहिए···आप यह इतने उदास क्यों दीखते हैं ?"

"कुछ वात ही ऐसी है ।"

"क्या वावूजी ?"

"डरता हूँ कैसे कहूँ ?"

"मुझसे···अपने वेटे से कैसा डर वावूजी !"

"वात जो ऐसी है ।"

"फिर भी···क्या पाँडेजी ने अपने पैसे मांगे हैं ?"

"नहीं···"

"शान्ति के विवाह की वात है क्या ?"

"नहीं ।"

"क्या वेटी ने कोई अनुचित पग उठाया है ?"

"नहीं···यह भी नहीं ।"

"तो क्या है जिसके लिए आप चिन्तित हैं ।"

"कई वार सोचा, तुम्हें मां कहे या मैं···और मैं ही चला आया ।"

"मां के विपय में ।"

"नहीं दयाल ! मेरे, तुम्हारी माँ और शान्ति के अतिरिक्त इस घराने का एक और व्यक्ति भी है।"

"मैं समझा नहीं···"हरदयाल अनजान बनते हुए बोला।

"अपना प्रभुदयाल।"

"ओह ! तो आपका वह घाव अभी तक भरा नहीं ?"

"घाव तो भर गया था और मैं उसे भूल भी चुका था।"

"तब !"

"प्रकृति ने उसे वर्षों के बाद फिर कुरेद दिया है।"

"क्या वह फिर पकड़ा गया है ?"

"नहीं···किन्तु पकड़ा जायेगा।"

"तो हम क्या कर सकते हैं···हमारे लिए तो वह मर चुका है।"

"नहीं बेटा ! धीरज से काम लो एक बात कहूँ।"

"कहिये···"

"कुछ दिन हुए वह यहाँ आया था।"

"फिर···" हरदयाल ने असावधानी से पूछा।

"अब वह इज्जत का जीवन व्यतीत करना चाहता है।"

"उसे कौन रोकता है ?"

"पुलिस।"

"हाँ···उसकी पुरानी करतूतें···उसे चैन नहीं लेने देतीं।······कहता था एक बार अम्या क्षमा कर दें तो जीवन-भर उनका दास बन कर रहूँगा···बस,एक बार मुझे आप अपना लें···मुझे आश्रय चाहिए।'

"मेरे क्षमा कर देने से क़ानून तो उसे क्षमा नहीं कर सकता।"

"वह अपने काले अतीत को बिसरा कर सदा के लिए गाँव में रहना चाहता है यदि तुम आज्ञा दो तो मैं उसे अपने पास रख लूँ।"

"मैं क्या कह सकता हूँ ?"

"तुम्हारी इच्छा के बिना मैं उसे क्योंकर मुँह लगाऊँगा···यदि हमारा प्यार ही उसे फिर से इन्सान बना दे तो उससे अच्छी और

क्या बात होगी !"

"किन्तु मेरा निजी अनुभव तो इसका साक्षी नहीं बनता।"

"मुझ पर भरोसा रखो···मेरे साथ जमीन की देखभाल करेगा परिश्रम करेगा···और यदि उस पर भी उसने कोई ऐसा-वैसा अनुचित काम किया तो मुझ पर विश्वास रखो, मुझसे बढ़कर उसका वैरी कोई न होगा।"

"बाबूजी! मैं बेटे के सम्बन्ध में आपकी भावनाओं का पूरा आदर करता हूँ···आपका बेटा है तो वह मेरा भी भाई है···इस पर भी अपने हर अच्छे बुरे कार्य का उत्तरदायी वह स्वयं ही है···भावुकता के प्रवाह में बह जाने की अपेक्षा हमें वास्तविकता पर ध्यान देना चाहिए।"

"वास्तविकता···कर्त्तव्य···क़ानून···यह सब अन्धे हैं···कोरे हैं···कठोर हैं···क्या मन का जीवन में इनसे उच्च स्थान नहीं···वह लाख बुरा सही किन्तु फिर भी अपना लहू है···पानी से तो गाढ़ा ही है हम उसकी भलाई न सोचेंगे तो दूसरा कौन सोचेगा ?"

हरदयाल ने लैम्प के धुँधले प्रकाश में देखा, बाबूजी की आंखों में आंसू तैर रहे थे। पुत्र-स्नेह ने जोश मारा था, दबी हुई चिन्गारी स्वयं ही राख झटककर सुलग पड़ी थी। उन्होंने तो अपने मन की दशा हरदयाल पर प्रगट कर दी थी, किन्तु हरदयाल के मनो-मस्तिष्क की दशा से वे अनजान थे। उसके जीवन का घनौना रूप जो हरदयाल के सामने आ चुका था वहाँ बाबूजी की कल्पना में भी न आ सकता था ···वह चुपचाप गम्भीर खड़ा बाबूजी के मुख की ओर देखे जा रहा था।

सुशील की हत्या,मान लिया एक घटना थी 'दुर्घटना'···'स्टैला के प्रेम को घृणा में परिवर्तित करना उसका 'कर्त्तव्य' था किन्तु पिताजी की भावनाओं से लड़ना तो एक 'परीक्षा' थी···बहुत बड़ी परीक्षा··· ···यदि वह इस परीक्षा में असफल रहा···उसने पिता की भावनाओं को तुच्छ जानकर बस ठुकरा दिया, तो यह मानवता के विरुद्ध न होगा···।

बड़ा विचित्र असमंजस था,उलझन थी···वह मंजिल के पास पहुँच चुका था और उसे लौट जाने के लिए कहा जा रहा था। उस ने पिता जी की भरी हुई आँखों में झांक कर देखा। आँसुओं की बूँद टपका ही चाहती थी कि उसने अपनी उँगली से उन्हें पोंछ दिया। बाबूजी ने हरदयाल को गले लगा दिया।

"बाबूजी ! पूरा प्रयत्न करूंगा···आपके मन को समझाने का··· हम इन्सान क़ानून से भी भिड़ जाते हैं···भावना और कर्त्तव्य के संघर्ष में कर्त्तव्य की बलि भी दे देते हैं···किन्तु,अन्त में इनमे विधाता को क्या स्वीकार है···इसका निर्णय हम क्या कर सकते हैं ?"

हरदयाल ने यह बातें बड़े गम्भीर स्वर में कही। बाबूजी अपने कमरे में लौट गये। उन्होंने सोचा हरदयाल ने अपने छोटे भाई को क्षमा कर दिया है···और हरदयाल ने क्या सोचा यह शायद इस समय वह स्वयं भी नहीं जान पाया···हाँ, उसके दिमाग के ताने-बाने में गुंजलें अवश्य पड़ गईं। उसने बत्ती बुझा दी और अंधेरे का आश्रय लेकर अपनी चिन्ताओं में खो गया।

रात मौन थी और ठण्डी, किन्तु उसके मन मे घोर बवण्डर उत्पन्न कर दिये गये थे और वह फुंक रहा था।

वह एक विचित्र उलझन में फंस गया था। अपने मन व मस्तिष्क पर ऐसा बोझ अनुभव करने लगा जिसको चाहने पर भी वह हटाने में असमर्थ था।

वह संघर्ष के ऐसे कठिन मार्गों से गुज़र रहा था, जहाँ पग-पग पर निराशाएँ मानव को बेबस कर देती हैं। वह अपने को उस बाज़ीगर की तरह पतली रस्सी पर कलाबाजियाँ खाता महसूस कर रहा था जिसका थोड़ा-सा स्वप्न भी लोगों की हँसी बन जाता है और वह ऐसी भीड़ का अपने चारों ओर अनुभव कर रहा था जो मुंह बाये उसके गिरने की प्रतीक्षा कर रही है—उसने अपने को ऐसे वातावरण में फिसलता हुआ पाया और भय से उसने करवट बदल ली।

निस्तब्ध रात्रि और भी भयानक बन रही थी। चारों ओर ऐसी निःस्तब्धता कि पत्ते खड़कने की आवाज भी चौंका देती--ऐसी नीरव रात में उसके दिल की धड़कन घड़ी की टिक्-टिक् की तरह रात का सन्नाटा चीरती हुई समय को पीछे धकेल रही थी।

वह सारी रात सो न सका और घने अन्धकार में शून्य भेदी दृष्टि से छत की कड़ियाँ गिनता रहा और देखता रहा उन तराशों को जो समय से संघर्ष करते-करते आज तक भी अपना अस्तित्व किस प्रकार कायम रख सकी थीं। इस विचार के मानसिक संघर्ष में वह उस घने अंधकार में भी अपने पैर जमाने का व्यर्थ प्रयास करता रहा था।

इसी समय घंटाघर के तीन घंटे बजे और एकाएक उसकी विचार धारा अपने स्थान से हिल गई। उस समय वह मन और मस्तिष्क पर बड़ी थकावट महसूस करने लगा और बाह्य वातावरण में भी कुछ हलचल-सी मच गई और वह अज्ञात शब्द करती मकान की छत पर आँखें गड़ाए फिर लेट गया।

पर कुछ ही क्षण बाद वह फिर उठा और दीपक जला अपनी परीक्षा की तैयारी में जुट गया।

नौ

अभी रात्रि शेष थी, भोर होने में काफी समय था, सारा संसार नींद की मदहोशी से अभी जागा नहीं था। हरदयाल अभी भी जाग रहा था, उसकी अलसाई आँखें नींद के भार से झुकी पड़ रही थीं। पर फिर भी एक ऐसी कसक उसके अन्तर में प्रज्वलित थी, जिसकी यातना से वह सो न सका था, करवटें बदलते-बदलते ही रात का तीसरा पहर आ पहुँचा था।

दुःखी होकर हरदयाल ने शय्या छोड़ी और एक जीर्ण वृक्ष के तने के सहारे आकर खड़ा हो गया। शीतवायु में इतनी सिहरन थी पर फिर भी वह अपने मानसिक संतुलन को सम्भाल नहीं पा रहा था। उस पर इस वातावरण का कुछ भी प्रभाव न हुआ और वह उसी समस्या के समाधान में डूबने-उतारने लगा।

क्या वह अपनी कठिनाई का समाधान पा सकेगा? क्या वह अपनी डगमगाती नाव का संतुलन ठीक रखने में समर्थ हो सकेगा? उसी समय उसे वर्षों पूर्व की वह घटना याद आने लगी जब वह कालेज के लम्बे अवकाश में लौटा था और प्रभु बाबूजी के किसी मित्र से उनके नाम पर पचास रुपये माँग लाया था! ···पूरे पचास रुपये··· और वे उसने अपनी मित्र मण्डली में बड़ी निर्दयता से व्यय कर दिये थे।

एक गाँव में···और फिर स्कूल के लिए इतनी रकम बहुत अधिक थी···इतनी रकम से तो कालेज-जीवन का एक मास निश्चिन्तता से गुजारा जा सकता था। पर प्रभु ने तो वह रकम दो दिन में ही स्वाहा कर डाली।

जब उसे इस बात का भान हुआ तो वह इसी वृक्ष के पास आ

बैठा और बहुत देर तक प्रभु के स्कूल से लौटने की प्रतीक्षा करता रहा। वह मुख्य द्वार से तख्ती हवा में उछालता ज्योंही प्रविष्ट हुआ, बड़े भैया को अकस्मात् इस रुद्र रूप में देखकर सहम गया।

तब भैया ने प्रभु को उसी तख्ती से इतना पीटा कि माँ और बाबू जी को ही आकर उसे छुड़ाना पड़ा। उलटा वो ही उसे भला-बुरा कहते रहे, पर उसने उस समय इस बात का ध्यान नहीं दिया था, क्योंकि तब वह इतना ज्ञान नहीं रखता था, पर फिर भी वह इतना अवश्य समझ गया कि यह बालक किसी दिन अवश्य ही कोई विपद खड़ी करेगा।

बाहर गली में कुत्तों के भौंकने का शब्द हुआ और तभी उसके विचारों का क्रम विशृंखलित हो गया और वह उस स्थान से हटकर कुछ क्षण इधर-उधर ताकता रहा, पर फिर शीघ्रता से अपने कमरे में दाखिल हो गया।

हरदयाल की आँखों में नींद न थी। वह अपनी उलझनों को सुलझाने के प्रयत्न में लगा था। उनमें कर्त्तव्य और भावना के संघर्ष की चरम सीमा थी। उसको अपना कर्त्तव्य निश्चित करना था···यदि पिता के कहने से उसके पग तनिक भी डगमगाए तो वह प्रभुदयाल को सदा के लिए खो देगा···और फिर एक 'सुशील' ही नहीं कई अधखिली कलियों को मसलने के अपराध में प्रभु अपने हाथ रंगेगा···तो क्या वह प्रभुदयाल को छोड़ दे···? क्या उसका यह घोर अत्याचार क्षमा करने योग्य है ···यदि उसके भाई के स्थान पर कोई और होता तो···तो···?

कई प्रश्न उसके मस्तिष्क-पट से टकराकर लौट जाते। कितने विचित्र संघर्ष और कितनी कठिन परीक्षा में था वह।

हरदयाल उठा। कपड़े पहने, अटैची तैयार की। पिस्तौल कमर में बांधा। और पूरी तैयारी करने के पश्चात् दबे पाँव कमरे से बाहर हो गया। बाबूजी इत्यादि सो रहे थे। सब द्वार भीतर से बन्द थे। वह अटैची उठाये बरामदे को पार करके आंगन में आ गया। उसने

मुड़कर एक दृष्टि अंधेरे में डूबे अपने घर पर डाली। जिसके मौन में कितने ही रहस्य छिपे थे। और संसार की सब आपत्तियों का सामना करके वह दृढ खड़ा था।

आज प्रथम अवसर था कि जब वह अपने माता-पिता व बहन से बिना मिले जा रहा था। वह भी उस काम के लिए, जिसका आघात उसके माता-पिता के लिए सहना कठिन था।

मन पर अधिकार कर उसने आंगन पार किया और बाहर का किवाड़ खोलकर बाहर आ गया। रात के मौन को चीरता, गांव की गलियाँ पार करता, वह तबेले की ओर बढ़ रहा था, जहाँ उसका मुजरिम छिपा हुआ था।

वह आज प्रातः होने से पूर्व प्रभु को कैद करके गाँव से दूर ले जाना चाहता था। आज उसने स्नेह तथा ममता के सब बन्धनों को तोड़ दिया था। वह भावना का कैदी न बनना चाहता था; क्योंकि उसे अपना कर्त्तव्य निभाना था।

कुछ ऐसे ही भाव लिए वह तबेले के द्वार तक जा पहुँचा, जो साधारणतः बन्द था; वह टूटी हुई दीवार के छेद तक पहुँचा और भीतर जाने से पूर्व उसने चारों ओर देखा। वहाँ कोई न था। वह बिना खटका किये भीतर कूद गया। वह पशुओं के चारे की कोठरी में गया और कान लगा कर भीतर की आहट लेने लगा। कोई भीतर की हलचल उससे कह रही थी कि वहाँ कोई है। कुछ क्षण वह उस आहट को समझने का प्रयत्न करता रहा और जब वह इस बात से निश्चिन्त न हो सका कि शत्रु किस हाल में होगा तो उसने पिस्तौल पर हाथ रख लिया और बाहर ही एक चबूतरे पर बैठ गया।

दूर मन्दिर में घण्टियाँ बज उठीं। वातावरण में फैला अंधेरा अपने आप में सिमटने लगा। हरदयाल के मन की धड़कन तेज हो गई। एकाएक उसने धीरे से द्वार को भीतर की ओर धकेला। मौन को चीरती हुई किवाड़ की ध्वनि सुनाई दी। भीतर फर्श पर कुछ

हलचल-सी हुई। हरदयाल ने झट अपने आप को किवाड़ की ओट में छिपा लिया और छिपकर भीतर झांकने लगा। सामने दीवार पर एक छाया सी दिखाई दी और आवाज़ आई—

"कौन शांति ?"

"हूं।"होंठों को दबाकर पतले स्वर में हरदयाल ने उत्तर दिया और धीरे-धीरे उस ओर बढ़ने लगा।

कोठरी में बिल्कुल मौन था, किन्तु दोनों की सांसों से कुछ ऐसी ध्वनि उत्पन्न हो रही थी जैसे फूल के ढेर में कोई सांप रेंग रहा हो। सांस से स्पष्ट था कि प्रभु फूस के ढेर की दूसरी ओर है, किन्तु वह आगे नहीं बढ़ा, बल्कि वहीं स्थिर खड़ा रहा। हरदयाल ने सोचा कहीं उसे संदेह तो नहीं हो गया कि शांति के स्थान पर कोई दूसरा व्यक्ति वहां आ गया है और इसी कारण से वह आगे नहीं बढ़ा। वह यह सोच ही रहा था कि प्रभु की आवाज़ आई—

"मैं जानता था···तुम मुझे राखी बांधने अवश्य आओगी···किन्तु, मैं तुम्हारे समीप आने से डरता हूं···मैंने कभी तुमसे भाई का सा वर्ताव नहीं किया। सदा तुम लोगों को दुःख ही दिया है।"

हरदयाल ने सांस रोक ली। आज उसने वर्षों बाद प्रभु की आवाज़ सुनी थी। आवाज़ पहले से भारी थी, किन्तु उसे विश्वास हो गया कि आवाज़ जानी-पहचानी ही है। कुछ देर रुककर उसने फिर कहा—

"मैं अपना काला मुंह तुम्हें दिखाना नहीं चाहता···लो मेरा हाथ ···इसी पर बांध जाओ···इस समय मैं प्यार के अतिरिक्त तुम्हें कुछ भी न दे सकूंगा···तुम्हारा उपहार मेरे सिर पर उधार रहा।"

हरदयाल ने देखा, वह छाया थोड़ी आगे सरक आई थी। बांह बढ़ी और आवाज़ आई—

"तुम बोलती क्यों नहीं···शांति ?"

अभी शब्द उसकी ज़बान पर ही थे कि राखी की डोरी के स्थान पर उसका हाथ हथकड़ी में जकड़ गया। वह चीख मारकर जाल में

फँसे हुए पक्षी के समान फड़फड़ाने लगा। उसने हथकड़ी को पूरे बल से खींचकर भागने का प्रयत्न किया, परन्तु हरदयाल ने उसे फ़र्श पर गिरा दिया। प्रभू फिर उठा। हरदयाल ने अब के पूरे बल से खींचकर उसके पेट में लात मारी और वह चीखकर बेसुध-सा होकर गिर पड़ा। हरदयाल ने खींचकर उसे अपने सामने किया और टार्च का प्रकाश उसके मुँह पर फेंका। उसने गर्दन उठाई और हरदयाल को देखा—

"भैया···तुम···!"

"बस···अपनी विषैली ज़बान पर मेरा नाम मत लाना।"

हरदयाल ने देखा, इस खींचा-तानी में उसके मुँह से लहू बहने लगा था। उसने जेब से पिस्तौल निकाली और नली उसकी ओर करके उसे वहाँ से न हिलने का आदेश दिया।

उसका एक हाथ हथकड़ी में बँध चुका था। हरदयाल ने पिस्तौल को उसकी छाती पर रखकर उसका दूसरा हाथ भी जकड़ दिया और उसे कोठरी में छोड़कर के बाहर से किवाड़ बन्द कर दिया।

अपनी इस सफलता पर उसके मन में हल्की-सी प्रसन्नता उत्पन्न हुई, किन्तु शीघ्र ही इस खेद ने उस प्रसन्नता को ढक लिया कि उसे यह सब कुछ अपने माता-पिता के पास करना पड़ा जिनके लिए इस आयु में इस दु:ख को सहन करना अति कठिन है···पर वह स्वयं विवश था···अति विवश।

कोठरी से निकलते ही उसने एक घोड़ा खोला और उस पर ज़ीन कसने लगा। उसका अभिप्राय उजाला होने से पूर्व ही प्रभु को गाँव से दूर ले जाने को था। दूसरे दिन तक गाड़ी की प्रतीक्षा उचित न थी···और फिर गाँव-भर में यह ख़बर फैलने का डर था। इस बदनामी से बचने के लिए उसने यही उचित समझा कि दस-पन्द्रह कोस नीचे जाकर बस पकड़ ले। ज्यों-ज्यों अँधेरा घटता जा रहा था उस की बेचैनी बढ़ती जा रही थी।

घोड़ा तैयार करके उसने पेड़ के तने से बाँधा ही था कि उसे

अपने पीछे आहट सुनाई दी। वह पिस्तौल पर हाथ रखकर मुड़ा। अभी-अभी बाहर का फाटक खोलकर शान्ति भीतर आई थी। भाई से आँखें चार होते ही उसके पाँव तले की धरती खिसक गई। उसके हाथ में पकड़ी हुई थाली नीचे गिर गई और वह चीख मार कर उन्हीं पाँवों भागती हुई बाहर निकल गई। हरदयाल ने उसे पुकार कर रोकने का प्रयत्न किया, किंतु वह नहीं रुकी।

अब हरदयाल के पास बहुत थोड़ा समय था। बाबूजी के आने से पहले ही उसे यहाँ से चले जाना चाहिये। घोड़े को थपकी देकर वह कोठरी में लौट आया। प्रभु अभी तक वैसे ही फूस पर नीचे पड़ा था। हरदयाल ने टार्च उसके मुँह की ओर करके उसे उठने का संकेत किया। वह धीरे-धीरे उठा, किंतु खड़ा होते ही फिर लड़खड़ा कर गिर पड़ा। हरदयाल ने बढ़कर हथकड़ी की रस्सी से उसे खींच कर फिर खड़ा किया और बाहर चलने का आदेश दिया।

"कहाँ ले जा रहे हो मुझे ?"

"जीवन के अन्तिम मार्ग तक···"

"विश्वास करें भैया···मैंने यह हत्या नहीं की।"

"यह तुमने क्यों कर जाना कि मैं तुम्हें 'हत्या' के अपराध में पकड़ने आया हूँ ?"

"मेरा अभिप्राय···शायद···"

"अभिप्राय साफ़ है···तुम हत्यारे हो।"

"भैया···अबके मुझे क्षमा कर दो।"

"बस···जबान बन्द करो···भावुकता से तुम बाबूजी, माँ और बहिन पर प्रभाव डाल सकते हो···मुझ पर नहीं। मैं तुम्हें कभी क्षमा न कर सकूँगा।"

"तो याद रखो···यदि तुम मुझे यों पकड़कर ले गए तो इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।"

"अच्छा और बुरा क्या है···यह मैं जानता हूँ···रहा धमकियों

का प्रश्न···मैं इससे डरने वाला नहीं।"

"यह तुम्हारा अन्तिम निर्णय है क्या ?"

"मेरा नहीं न्याय का यही निर्णय है।"

"न्याय···न्याय···"वह बड़बड़ाया और लड़खड़ाता हुआ बाहर जाने लगा। हरदयाल ने पिस्तौल की नली उसकी पीठ पर रख दी और उसे उस ओर चलने का संकेत किया जिधर घोड़ा पेड़ से बंधा हुआ था। प्रभु ने कांपते हुए होंठों से कुछ कहना चाहा, किंतु शब्द उसके कंठ में ही अटक कर रह गये।

घोड़े पर बिठाने के बाद हरदयाल ने उसके पाँव भी कसकर रस्सी के साथ रकाब में बांध दिये। उसे अपनी इच्छानुसार ठीक प्रकार बिठा चुकने के बाद दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा। प्रभु की आंखों में आंसू भर आये थे। हरदयाल ने गम्भीर दृष्टि उस पर डाली और घोड़े की पीठ को ठोकते हुए छोटे भाई से संबोधित करके बोला—

"हो सकता है तुम मेरे हाथों से बच निकलो···या न्याय अपने अंधे निर्णय में तुम्हें छोड़ दे···समाज की आँखों में तुम निरन्तर धूल झोंकते चले जाओ, किंतु यह सब बात मन से कभी न भुलाना कि इन सबसे ऊपर भी एक हाथ है···एक आँख है···जिससे कुछ छिपा नहीं रहता और जो तुम्हें कभी···क्षमा नहीं कर सकती···"

शब्द अभी हरदयाल के मुँह में ही थे कि उसकी पीठ पर आहट हुई और चौंककर पिस्तौल की नली उधर करते हुए पलटा। सामने बाबूजी, माँ और शान्ति खड़े थे। हरदयाल ने पिस्तौल नीचे कर ली और मौन हो उनकी ओर देखने लगा। शान्ति और माँ की आंखों में आँसू थे, किंतु बाबूजी की आँखों में क्रोध की ज्वाला निकल रही थी। यह शान्ति और पत्नी को पीछे छोड़कर आगे बढ़े और बोले—

"तुम यों विश्वासघात करोगे···इसकी मुझे आशा न थी। मेरी पीठ में छुरा भौंकने से तो अच्छा था कि तुम मेरी छाती पर वार करते।"

"कैसा विश्वासघात...कैसा छुरा बाबूजी ! मैं समझा नहीं ।" हरदयाल ने धीरज से कहा ।

"मुझसे झूठ बोलकर कि मैं भाई को बचाने का प्रयत्न करूँगा, तुमने मुझसे उसका भेद लिया और स्वयं ही उसे पकड़ने चले आये ।"

"और क्या करता बाबूजी ! गाँव में उसकी बदनामी न हो, दुनियाँ हमारा ठट्ठा न उड़ाये...इसलिए अँधेरे का आश्रय लेकर इसे चुपचाप लिए जा रहा हूँ ।

"किंतु क्यों ? ऐसा क्या वैर है तुम दोनों में ?"

"वही वैर जो एक पुलिस अफ़सर को एक अपराधी से होता है।"

"क्या तुम्हें अपनी नौकरी अपने भाई से प्रिय है ?"

"नौकरी नहीं कर्त्तव्य...शायद कर्त्तव्य से भी आँख बन्द कर लेता, यदि इसने कभी तनिक भी अपने आपको संवारने का प्रयत्न किया होता।"

"पुलिस की दृष्टि में एक बार भूल से कोई अपराध क्या कर लिया कि अब जीवन-भर उसका छुटकारा नहीं ।"

"क्षमा कीजिए बाबूजी ! मैं आपसे इस विषय पर सहमत नहीं ...उसे आपसे,मुझसे क्या नहीं मिलता था? और इसने क्या नहीं किया ? ...भाग्य किसी के लिए फूल खिलाये और वह उन्हें अपने पाप से रंग दे तो इसमें किसी दूसरे का क्या दोष...इसका दण्ड तो उसे स्वयं ही भुगतना है...यही नीति है, यही न्याय है, यही मानवता है..."

"किंतु पाप को तो वह पीछे छोड़ आया है. वह प्रायश्चित्त कर चुका है...अब तो वह काम और परिश्रम में डूबकर अपना अतीत भुला देना चाहता है...वह फिर से अपने घराने का...हम सब का अंग बनने का वचन दे रहा है ।"

"यह सब झूठ है...इस बार वह अपने पाप को धोने नहीं आया बल्कि वह अपने जीवन के उस भयानक कलंक को छिपाने आया है जो अमिट ग्रहण के समान उसके मुँह पर अंकित है ।" हरदयाल ने कुछ उत्तेजित होकर कहा ।

बाबूजी एकाएक घबरा गये और बोले "क्या कोई नया गुल-खिलाया है इसने···?"

"बाबूजी, आप जानते हैं सुशील की मृत्यु हो गई है।" हरदयाल ने धीरे से कहा।

"हाँ···तो क्या ?" बाबूजी ने अटक-अटक कर पूछा।

"वह बीमारी से मरी है···यह मैंने आपसे झूठ कहा।"

"तो···"

"उसकी मृत्यु गाड़ी मे हुई जब वह हमें मिलने के लिए भोपाल आ रही थी।"

"कैसे ?" उन्होने चौंकते हुए पूछा।

"किसी अत्याचारी ने" वह कहते-कहते रुक गया। उसने एक दृष्टि शांति पर डाली। उसके हाथ में अभी तक राखी की वह डोरी थी जो वह प्रभु को बाँधने के लिए लाई थी। बाबूजी उसके संकेत को समझ गये और उन्होंने शांति को दूर हटने का संकेत किया। शांति घोड़े के दूसरी ओर प्रभु के पास आ खड़ी हुई। हरदयाल बाबूजी के समीप आ गया और धीमे स्वर में अपनी बात को पूरा करते हुये बोला—

"उसका सतीत्व लूटकर उसकी हत्या कर दी।"

बाबूजी और माँ यह सुनते ही स्तब्ध रह गये। उनकी दृष्टि घूम कर घोड़े पर बँधे भाग्यहीन बेटे पर पड़ी जो घोड़े पर बैठे-बैठे झुक कर शांति से राखी बँधवा रहा था। हरदयाल ने उँगली उठाते हुए उसकी ओर संकेत किया और बोला—

"और वह अत्याचारी यही आपका लाड़ला बेटा है।"

माँ यह बात सुनकर चुपचाप खड़ी की खड़ी रह गई जैसे किसी ने कुछ सुँघा दिया हो। बाबूजी के मुखकी रंगत बदल गई। क्षण भर में पासा पलट गया और वे क्रोध में भरे हुये चिल्लाये—

"शान्ति···"

शांति डर गई। राखी की डोरी उसके हाथ से धरती पर गिर गई और काँप कर पीछे हट गई। बाबूजी की आवाज़ सुनकर घोड़ा बिदक गया और हिनहिना कर अपने स्थान पर उछलने लगा। हरदयाल बाबू जी को संबोधित करते हुए फिर बोला—

"अब आप स्वयं ही सोचिए मैं क्या करूँ···जिसने एक निर्दोष भोली-भाली लड़की से यह बर्ताव किया हो···मैं सब कुछ जानते हुए भी उसे क्योंकर छोड़ दूँ···कल कोई हमारी शांति से ऐसा व्यवहार करे तो क्या···"

"हरदयाल ! बस, बस···"

"सुशील ! मेरी बहन हो या कोई भी हो···उन सब की रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य है···मानवता के नाते।"

"हरदयाल ! चुप हो जाओ। यह सुनाने से पहले तो अच्छा था कि कोई मुझे यह सूचना देता कि मेरा बेटा मर गया है तो प्रसन्नता होती।"

बाबूजी से बातें करते हुए हरदयाल की दृष्टि घोड़े पर न थी। प्रभु ने इस अवसर से लाभ उठाया और शांति को संकेत द्वारा पास रखी दरांती से घोड़े की रस्सी काट देने को कहा। शांति ने आँख बचा कर ज़ोर से दरांती रस्सी पर दे मारी।

घोड़ा पहले ही बेचैन हो रहा था। रस्सी कटते ही ज़ोर से उछला और बाबूजी और हरदयाल घूमकर उधर देखने लगे। घोड़ा उछलकर इधर-उधर भागने का मार्ग ढूंढ़ने लगा। हरदयाल ने झट पिस्तौल उठा ली और बाबूजी ने पास रखी हुई चाबुक उठा ली। शांति डर के मारे भाग कर माँ से लिपट गई।

घोड़ा ज़ोर-ज़ोर से उछलकर टूटी हुई दीवार को फाँदने का प्रयत्न करने लगा। हरदयाल ने उस पर पिस्तौल का निशाना बाँध लिया, पर बाबूजी ने झट उसका हाथ रोक लिया और स्वयं चाबुक चलाते हुए उधर बढ़े। घोड़ा बदमस्त हो चुका था और किसी प्रकार

वश मे न आता था। बड़ी दौड़-धूप के पश्चात् आखिर बाबूजी उसकी लगाम थामकर उसे काबू करने में सफल हो गये। प्रभु हाथ और पाँव से बँधा हुआ घोड़े की पीठ पर जकड़ा बैठा था। उसकी यह चाल भी व्यर्थ रही थी। बाबूजी घृणापूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखकर बोले—

"ले जाओ इस चाण्डाल को मेरी आँखों के सामने से, मैं समझ लूँगा कि यह मेरे लिए मर गया है···शायद इसकी मृत्यु मे ही हम सब की भलाई है।"

थरथराते हुए होठों से ये शब्द उनके मुँह से निकले और उन्होंने घोड़े की लगाम हरदयाल के हाथ में थमा दी। हरदयाल ने लगाम लेते हुए उनका चरण स्पर्श किया और बोला—

"मुझे क्षमा कीजिये बाबूजी ! इस सबके लिए···"

बाबूजी की आँखों मे आँसू भर आये और उन्होंने मुँह मोड़ लिया। हरदयाल ने थोड़ा आगे बढ़कर माँ के पाँव छुए व शान्ति के सिर पर हाथ फेर कर विदा होने लगा।

"तुम पैदल जाओगे क्या ? 'बाबूजी ने मुड़कर भर्राई हुई आवाज़ में पूछा।

"नहीं पुलिस चौकी से दो घोड़े ले लूँगा···आपका घोड़ा वहीं से लौटा दूँगा।"

थोड़ी देर के लिए फिर मौन छा गया। हरदयाल धीरे-धीरे पाँव उठाता हुआ घोड़े की लगाम थामे फाटक की ओर बढ़ा। माँ और शान्ति का दुःख से कलेजा फटा जा रहा था। दोनों 'बेटा' और 'भइया' कहती हुई घोड़े की ओर लपकी। बाबूजी ने बाहें उठाकर उन दोनों को वहीं रोक लिया और बोले—

"जाने दो···उसे जाने ही दो···वह हम सबके लिए मर गया है···हाँ, मर गया है···जिसने माँ के आँचल की शर्म और क्वाँरी बहन के सतीत्व की लाज नहीं रखी—वह हमारा कैसा बेटा—वह हमारे

लिए था ही नहीं, और था तो मर गया है।"

बावूजी माँ वेटा दोनों को थामे रहे और वे सिसकियाँ भरती घोड़े की टापों की ध्वनि सुनती रहीं जो धीरे-धीरे दूर होती जा रही थी। धीमी होती-होती आहट समाप्त हो गई, किंतु इन तीनों के हृदय की गति वड़ी देर तक तेज चलती रही। माँ और शान्ति रोती रहीं और वावूजी उन्हें ढारस वंधाते रहे।

सूर्य की पहली किरण ने आगमन किया, यह प्रकाशमयी सुवह का सन्देश था···अँधेरा पूर्णतः छँट चुका था, किन्तु जीवन के इस नाटक के ये पात्र घोर दुःख में डूव गये थे···वड़ा विचित्र दुःख था···यह स्नेह था, सहानुभूति भी थी अपने उस हृदय के टुकड़े के लिए जिस का यह विछोह शायद सदा का विछोह था, किन्तु इसके साथ-साथ लिपटा हुआ उस घोर पाप का भी भास था जो उन हथकड़ी में वँधे हुए हाथों ने किया था।



हमारे अन्य प्रकाशन

उपन्यास

सिसकते साज़	गुलशन नन्दा	६·००
नीलकमल	गुलशन नन्दा	४·५०
माधवी	गुलशन नन्दा	४·५०
सूखे पेड़ सब्ज़ पत्ते	गुलशन नन्दा	४·५०
पत्थर के होंठ	गुलशन नन्दा	३.७५
एक नदी दो पाट	गुलशन नन्दा	४·२५
डरपोक	गुलशन नन्दा	४·००
मैं अकेली	गुलशन नन्दा	२·५०
गुनाह के फूल	गुलशन नन्दा	२·५०
तीन इक्के	गुलशन नन्दा	२·५०
काली घटा	गुलशन नन्दा	२·५०
कांच की चूड़ियाँ	गुलशन नन्दा	२·७५
रूपमती	अनु० गुलशन नन्दा	४·००
उमराव जान अदा	अनु० गुलशन नन्दा	४·५०
मुझे जीने दो	अनिता चट्टोपाध्याय	५·००
भोर का तारा	अनीता चट्टोपाध्याय	३·००
सुहागदीप	दयाशंकर मिश्र	४·००
दो दिल दो आँखें	कृष्ण गोपाल 'आबिद'	२·५०
मँझधार	मुज़तर हाशमी	४·२५
एक लड़की फूल, एक लड़की काँटा	मुज़तर हाशमी	४·००

स्पोर्ट्स तथा खेल कूद

खेलें कैसे ? (सचित्र)	पी० एन० अग्रवाल	५·२५
क्रिकेट (सचित्र)	पी० एन० अग्रवाल	१·७५
हाकी, फुटबॉल (सचित्र)	पी० एन० अग्रवाल	१·५०
बच्चों के खेल (सचित्र)	गो० राम बालक	२·५०

नाटक व एकांकी

बुरे फंसे	सम्प० राजेन्द्र कुमार शर्मा	३·२५
डाक घर	रवीन्द्रनाथ टैगोर	०·६५
जब पर्दा उठा	सम्प० प्रकाश पंडित	४·२५
मेरे नाटक	रवीन्द्रनाथ टैगोर	४·००
शरत् के नाटक	शरत् चन्द्र चटर्जी	६·००
मीर साहब की ईद	शौकत थानवी	३·२५
लाटरी का टिकट	शौकत थानवी	२·५०

जीवनोपयोगी

आत्मविश्वासी बनो	गन्धर्व	३·५०
अपने आपको पहचानिये	महावीर अधिकारी	३·००
आपका व्यक्तित्व	आनन्द कुमार	४·००
जीना सीखो	देसराज व गन्धर्व	३·००
जीवन और व्यवहार	स्वेट मार्डन	२·५०
मानसिक सफलता	दयानन्द वर्मा	२·५०